

ॐ

आचार्य शंकर का जीवन

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
निरंजनपीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर
श्री १०८ स्वामी नृसिंह गिरिजी महाराज
द्वारा सन् ०८.०९.१९४९ से १४.०९.१९४९ तक प्रदत्त
'धर्मोपदेश'

श्रीदक्षिणामूर्ति मठ, प्रकाशन
वाराणसी

© प्रकाशकाधीन
प्रकाशक
श्रीदक्षिणामूर्ति मठ, प्रकाशन
डी-४६/६, मिश्र पोखरा, वाराणसी
वितरक
विद्यावती प्रकाशन
बी-२१६, चन्दू नगर,
करावलनगर रोड, दिल्ली-११००६४
ISBN : 978-93-82697-04-6

मूल्य : ₹ १५०.०० मात्र

प्रथम संस्करण
संवत् २०७३
अक्षर संयोजक
प्रिंस कम्प्यूटर्स
दिल्ली-११००६४
मुद्रक
राजौरिया ऑफसेट
दिल्ली-११००६३

प्रकाशकीय

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी नृसिंह गिरिजी महाराज बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध से उत्तरार्धपर्यन्त (सन् १९३३ से १९७८ तक) वेदान्त एवं हिन्दू धर्म के अद्वितीय ब्रह्मनिष्ठ प्रचारक रहे एवं संन्यासी समाज के सामने हमेशा के लिये एक आदर्श स्थापित कर गये। पंजाब, राजस्थान, दिल्ली के क्षेत्र में उनका निरन्तर प्रवास सत्संग-सरिता प्रवहित करता रहा एवं असंख्य यतियों ने उनके श्रीचरणों की सेवा करते हुए वेदान्तों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। तथापि उस काल के प्रचलन के अनुसार उनके वक्तव्य बहुत कम ही संगृहीत रखे गये एवं स्वल्प उपदेश ही लिपिबद्ध दशा में उपलब्ध हैं। ईस्वी सन् १९४६ में दिल्ली में हुए प्रवचन 'धर्मोपदेश' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुए थे। कुछ बाद के प्रवचन भी इसी शृंखला में प्रकट हुए। कुछ वर्ष पूर्व श्रीहेमचन्द्र वर्मा के प्रयास से धर्मोपदेश-नामक एक उपलब्ध प्रवचन-संग्रह प्रकाशित हुआ था। उन्हीं को यह संकलन भी प्राप्त हुआ और इसे विषयानुसार 'आचार्य शंकर का जीवन' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है।

ईस्वी सन् १९५१ में दिल्ली में श्रीविश्वनाथ स्थापना के अनन्तर प्रतिवर्ष वार्षिकोत्सव में विभिन्न विद्वत्परमहंसों के सदुपदेश अनवरत मिल रहे हैं। वे भी व्यवस्थित रूप में संगृहीत नहीं रखे गए किंतु मध्य में पण्डित श्री भगीरथ पाण्डेय ने कुछ उपदेश अक्षरारूढ कर लिये थे, उन्हीं में से ईस्वी सन् ७१ और ७४ के जो वक्तव्य उपलब्ध हुए वे भी इस प्रकाशन में जोड़ दिये गये हैं।

आशा है भक्तगण इन उपदेशों से प्रेरणा पाकर आत्म-कल्याण के भागी बनेंगे।

विषय सूची

प्रथम धर्मोपदेश	७
द्वितीय धर्मोपदेश	११
तृतीय धर्मोपदेश	१५
चतुर्थ धर्मोपदेश	२०
पंचम धर्मोपदेश	२५
षष्ठ धर्मोपदेश	२६
सप्तम धर्मोपदेश	३३
अष्टम धर्मोपदेश	३७

श्रीविश्वनाथ संन्यास आश्रम (दिल्ली) के वार्षिकोत्सवों में प्रवचन

संस्कृत	४१
कर्म	४५
जीवन का लक्ष्य	४७
भक्ति	५०
उपनिषदों में प्रतिपादित मानव जीवन	५५
उपनिषदनुसार मानवजीवन का उद्देश्य	५८
भगवद्गीतानुसार मानव जीवन का उद्देश्य	६१
गीतानुसार मानव जीवन का उद्देश्य	६४
संसार से मुक्ति	६६

तेइसवाँ वार्षिक महोत्सव

कर्मयोग	७२
कर्मयोग	७७
कर्मयोग	८२
भक्ति	८७
वेदान्त विज्ञान	९१
ब्रह्मतत्त्व	९७
भजन	१०१
भक्ति	१०४
आशीर्वाद	११०

प्रथम धर्मोपदेश

संग्रहकर्ता : महावीर पाण्डव

८-९-४९

(१)

सगुण और निर्गुण परमात्मा में कोई भेद नहीं है। जल और तरंगों में कोई भेद नहीं हो सकता। निर्मल तथा निश्चल चित्त में ईश्वरीय प्रेम तथा ज्ञान प्रकट होता है। चित्त को आकर्षित करने के लिये परमात्मा का अवतार होता है। भगवान् कपिल ने अपनी माता देवहूति को निर्गुण-निराकार का उपदेश देकर सगुण-साकार की उपासना बताई है। शुकदेव ने परीक्षित से कहा है—‘तत्त्वों का कथन करने वाले कपिल अपनी माया से मनुष्यों को आत्म-ज्ञान का उपदेश देने के लिये उत्पन्न हुए हैं।’ भगवान् कपिल कहते हैं—‘जो अनादि प्रकृति से परे हैं, और जो सबसे परे हैं, वही सबका प्रत्यगात्मा है। दूसरे सब प्रकृति से युक्त हैं।’ निर्गुण तथा निराकार परमात्मा का ध्यान निर्मल तथा निश्चल चित्त से ही हो सकता है। सगुण तथा साकार परमात्मा की उपासना से चित्त निर्मल तथा निश्चल होता है। भगवान् वासुदेव की भक्ति वैराग्य को प्रकट करती है। इस से मन साकार से हट जाता है और ज्ञान उत्पन्न होता है। प्रथम सगुण का ज्ञान और फिर निर्गुण का ज्ञान होता है। प्रथम सगुण तथा साकार परमात्मा के ध्यान की आवश्यकता है। सगुण में चित्त लग जाने से मन की निर्मलता बढ़ती जाती है। मन की अधिक निर्मलता से परमात्मा से आसक्ति हो जाती है। मैला मन तो संसार में ही भटकता रहता है। स्वच्छ लोहा चुम्बक की ओर झुकता है। निर्मल अन्तःकरण से

आचार्य शंकर का जीवन ◀ ७

जीवात्मा परमात्मा की ओर झुकता है आर प्रेमानन्द की अधिकता से मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ शिथिलता तथा निश्चलता को प्राप्त होते हैं। बहुत वर्षों के बाद बिछुड़ा हुआ मित्र या कोई प्रिय सम्बन्धी मिले, तो मनुष्य अवाक् रह जाता है, हृदय गद्गद् होने से कण्ठावरोध होता है, आँखों से आँसू बहने लगते हैं और मन भी शांत हो जाता है। सगुण तथा साकार परमात्मा के प्रेमानन्द से भक्त का भी ऐसा ही हाल होता है। भगवान् के मुख-चन्द्र की चन्द्रिका या नख-मणि की चन्द्रिका में मन लगाना चाहिए। प्रेम के उन्माद में मन विह्वल होकर ढीला हो जाता है। उस भक्त का मन परमात्मा के सिवा और कहीं नहीं जाता। मन लीन हो जाता है। अन्य का चिंतन हो ही नहीं पाता। प्रेम में उन्मत्त हो जाने से ध्येय को भी ग्रहण नहीं कर सकता। ध्येयाकारता मिट जाती है। इससे सच्चिदानंद निराकारस्वरूप का अनुभव होता है। ध्याता, ध्यान, ध्येय—यह त्रिपुटी अभेदस्वरूप में स्थित होती है। सगुण तथा साकार के ध्यान में ध्याता, ध्यान और ध्येय—यह त्रिपुटी होती है। इस त्रिपुटी में से किसी एक का अभाव हो जाये, तो शेष दोनों भी नहीं रहते। ध्यान का आधार चेतन है। ध्यान, ध्याता और ध्येय का प्रकाशक साकार स्वरूप होता है। इससे शुद्ध सच्चिदानंद का अनुभव होता है। त्रिपुटी की और त्रिपुटी के अभाव की प्रकाशिका सगुण के सौन्दर्य और माधुर्य की प्रमत्तता होती है। साधक और सिद्ध दोनों की प्रवृत्ति सगुण की ओर होती है। राजा जनक ज्ञानी थे, परन्तु भगवान् राम के दर्शन से उनका क्या हाल हो गया? राजा जनक ने कहा है—

इनहि विलोकत अति अनुरागा ।

बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥

सहज विरागरूप मन मोरा ।

थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥

सगुण में चित्त-लगने से निराकार का ज्ञान होता है। ब्रह्मनिष्ठ महात्मा, ज्ञानी, हंस, परमहंस भक्ति नहीं करते, प्रत्युत ज्ञान में मस्त रहते हैं, परन्तु उनका भी सगुण में प्रेम होता है। दुष्टों को मारने के लिए

अवतार नहीं होता, बल्कि भक्त तथा ज्ञानी को प्रेमानंद देने के लिए ही परमात्मा सगुण तथा साकार होता है। ज्ञान में ब्रह्मानन्द है, प्रेमानन्द नहीं है। ज्ञानियों से भक्ति कराने के लिए परमात्मा अवतार धारण करता है। जिस प्रकार हंस दूध और जल को अलग-अलग करता है, उसी प्रकार सांख्यशास्त्र के पुरुष-प्रकृति का विवेचन करनेवाले हंस कहलाते हैं। परमहंस वेदांत सिद्धान्तानुसार ब्रह्म और प्रकृति में रज्जु और सर्प की भाँति भावना करते हैं। ब्रह्म सत्य है और माया असत्य। माया के साथ परमात्मा का कल्पित सम्बन्ध है। इस प्रकार सत्य और मिथ्या को अलग समझने वाले परमहंस होते हैं। अधिष्ठान रहता है, अध्यस्त नहीं रहता। निर्गुण ब्रह्म परमानंद स्वरूप है। उससे अधिक आनंद किसी में नहीं है। प्रारब्ध से ज्ञानी को ब्रह्म का दर्शन नेत्र से सूर्यदर्शन की भाँति होता है। सगुण की दिव्य लीलाशक्ति के द्वारा जो सगुण स्वरूप है उसके चमत्कार का ज्ञान ज्ञानी को होता है। दिव्य लीलाशक्ति ज्ञानी के लिए दूरबीन के समान है। परमात्मा दिव्य लीलाशक्ति के द्वारा अवतार धारण करता है। ज्ञानी का चित्त जबरदस्ती सगुण में आकर्षित होता है। ब्रह्मानंद की अपेक्षा प्रेमानंद अधिक है। बीज में अंकुर, पत्र, पुष्प और फल उत्पन्न करने की शक्ति होती है। परन्तु फल में सब से अधिक स्वारस्य होता है, सौन्दर्य तथा माधुर्य होता है। गुलाब के बीज में काँटे, पत्ते और पुष्प उत्पन्न करने की शक्ति होती है। परन्तु उसकी शक्ति का विकासरूप पुष्प ही है। इसी प्रकार परमात्मा की महाशक्ति में जगत् के उत्पादन की शक्ति है, परन्तु उसकी दिव्य लीलाशक्ति विलक्षण है। अरणियों के मथने से अग्नि साकार रूप में प्रकट होती है, उसी प्रकार दिव्य लीलाशक्ति से सौन्दर्य तथा माधुर्य साकार रूप में प्रकट होता है। हमें सगुण का ध्यान करना चाहिए, निर्गुण तो मिल ही जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

एक ब्राह्मण का लड़का गीता का पाठ करता था। वह पहले जन्म का साधु था और देहान्त हो जाने पर उसी गाँव में ब्राह्मण के घर जन्म लिया था। साधु की कुटी में गया तो पूर्व जन्म की कहानी का उसे

स्मरण हो आया। कुटी में गीता देखते ही वह बोला—‘यह मेरी ही गीता है।’ वह गीता लेकर काशी विद्या पढ़ने के लिए गया। विद्याध्ययन के बाद उसने सोचा कि असत् संसार से छूटना ही विद्या का फल है। उसने संन्यास धारण किया और ज्ञानी हो गया। यह सोचकर कि निर्गुण-निराकार के ज्ञान में निमित्त गीता ही है, इस लिये गीता की टीका लिखने का उसने निश्चय किया। गीता के ठीक भावों को एक भगवान् कृष्ण के बिना और कोई नहीं जान सकता, अतएव टीका लिखने की योग्यता प्राप्त करने के लिये कृष्ण-दर्शन की अनिवार्य आवश्यकता है यह सोचकर उसने कृष्णदर्शन के लिये चालीस दिन का शास्त्रीय अनुष्ठान किया, परन्तु भगवान् के दर्शन नहीं हुए। इससे शास्त्रों से उसकी श्रद्धा जाती रही और वह शास्त्रों का खण्डन करने लगा। एक संन्यासी के कहने से उसने एक सप्ताह का अनुष्ठान किया। सातवें दिन भैरव ने दर्शन देकर उस से कहा—‘प्रतिबन्धक कारण से अनुष्ठान का शास्त्रानुसार फल तुम्हें नहीं मिला। तुम्हारे सिर पर ब्रह्म-हत्या का पाप था। उस अनुष्ठान से पाप का प्रतिबन्ध जाता रहा। अब फिर चालीस दिन का अनुष्ठान करो, तो फल मिलेगा।’ उसने फिर अनुष्ठान किया। भगवान् कृष्ण ने दर्शन देकर उससे कहा—‘तुम टीका लिखना शुरू कर दो। कोई शंका होगी, तो मैं बता दूँगा।’ फिर उसने गीता की टीका लिखी। यही वेदांत के प्रकांड पण्डित मधुसूदन सरस्वती थे।

द्वितीय धर्मोपदेश

९-९-४९

(२)

परमात्मा के दो स्वरूप हैं—सविशेष और निर्विशेष। दोनों स्वरूपों में कोई भेद नहीं है। परमात्मा अपनी माया से साकार होता है। यह शंका हो सकती है कि जगत् भी माया से और अवतार भी माया से होता है, फिर दोनों में भेद क्या? इस प्रश्न का उत्तर कल की कथा में दिया जा चुका है। गुलाब के बीज में पत्ते और काँटे उत्पन्न करने की भी शक्ति होती है और पुष्प पैदा करने की भी शक्ति होती है। पुष्प का मूल्य अधिक है, क्योंकि उसमें सौन्दर्य और सुगन्धि है। काँटे और पुष्प दोनों का बीज एक है परन्तु दोनों में बड़ा भेद है। निराकार से साकार में विलक्षण चमत्कार की शक्ति होती है। साकार स्वरूप में विशेष चमत्कार होता है। जिससे भक्त और ज्ञानी सगुण स्वरूप की ओर आकर्षित होते हैं और प्रेमानन्द को प्राप्त होते हैं। यह आकर्षण निराकार स्वरूप में नहीं है। गन्ना स्वयं मीठा होता है। यदि उसमें फल लग जाय तो उस फल के मिठास का कहना ही क्या? निराकार आनन्द स्वरूप है, फिर साकार में आनन्द का कहना ही क्या है? चन्दन का वृक्ष सुगन्धियुक्त होता है। यदि उसमें पुष्प लग जाय, तो उसकी सुगन्धि का कहना ही क्या? गन्ने का सार शर्करा, शर्करा का सार मिसरी होती है। गन्ने से शर्करा मधुर होती है और शर्करा से मिसरी मधुर होती है। वैसे ही उपनिषदों के साररूप परमात्मा के साकार रूप के सौन्दर्य तथा माधुर्य का कहना ही

क्या? कृष्ण वृन्दावन में क्रीड़ा कर रहे थे। कृष्ण का सौन्दर्य तथा माधुर्य देख कर एक भक्त ने कहा है—‘यह गोपिकाओं के प्रेम का समुदाय है या यादवों का सौभाग्यसार है या योगियों का योग ही साकार स्वरूप में विचरण कर रहा है?’ साकार में विलक्षण चमत्कार होता है, जिससे भक्तों तथा ज्ञानियों को विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश दर्पण में विशेष प्रकाश करता है, उसी प्रकार अवतार में आनन्द का विशेष भान होता है। एक गोपी दूसरी से कहती है—‘सखि, मैंने नंद के आँगन में एक कौतुक देखा, सुनो! वेदान्त जिसका प्रतिपादन करता है, उस वेदान्त-सिद्धान्तस्वरूप कृष्ण को धूलि-धूसरित शरीर से क्रीड़ा करते देखा।’ जिज्ञासु जिस के लिए वेदांत के अध्ययन तथा मनन का परिश्रम करते हैं, वही यशोदा की ऊखली में रस्सी से बँधा है।’

फिर भी यह प्रश्न होता है कि निराकार से साकार कैसे? परमात्मा की लीला से निराकार जीव साकार होता है। फिर निराकार परमात्मा साकार क्यों नहीं हो सकता? आकाश में केवल एक गुण है— शब्द। आकाश में स्पर्श-गुण नहीं है, परन्तु आकाश से वायु उत्पन्न होता है, जिसमें शब्द और स्पर्श ये दो गुण होते हैं। वायु से अग्नि पैदा होती है, जिसमें शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन गुण होते हैं। अग्नि तत्त्व से जल तत्त्व उत्पन्न होता है, जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार गुण होते हैं। जल से पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न होता है, जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध ये पाँच गुण होते हैं। आकाश भी तो आकाररहित अर्थात् निराकार होता है। वैसे ही आकाररहित निराकार तथा निरवयव परमात्मा साकार तथा सावयव होता है।

अवतार को परब्रह्म ही समझना चाहिए। साकार स्वरूप का ध्यान करने से क्या होता है? चौदह रसों का साररूप परमात्मा का रसरूप चित्त पर अंकित हो जाना ही भक्ति है। जिस प्रकार लाख कठिन होते हुए भी अग्नि से पिघलती है, उसी प्रकार अन्तःकरण कठिन होते हुए भी द्वेष या राग से पिघलता है। रागास्पद कामिनी और द्वेषास्पद शत्रु बार-बार याद क्यों आते हैं? उत्तर यह है कि राग और द्वेष से चित्त पिघल कर

उस पर स्त्री और शत्रु चिह्नित हो जाते हैं। पुत्र में स्नेह होने से पुत्र चित्त पर अंकित हो जाता है। उसी प्रकार भगवत्प्रेम से चित्त पिघलकर उस पर भगवत्स्वरूप अंकित हो जाता है। कंस को सदा कृष्ण ही कृष्ण नजर आता था, क्यों? क्योंकि कंस का कृष्ण में अति द्वेषभाव था। भागवत में भगवान् ने कहा है—‘मुझे कोई किसी भी भाव से भजे, मैं उसका कल्याण करता हूँ। जब तक लाख पिघलती नहीं, तब तक रंग उसमें स्थिर तथा व्यापक नहीं हो सकता। लाख के पिघलने पर उसमें रंग छोड़ा जाय, तो वह लाख के अणु-अणु में व्यापक हो जाता है और वह लाख से अलग नहीं हो सकता। लाख में रंग घुल-मिल जाता है। भगवत्प्रेम से मन पिघलता है, तो उस निर्मल मन में आनंदरूप भगवान्, लाख में रंग की भाँति घुल-मिल कर स्थिर तथा व्यापक हो जाते हैं। मन में भगवान् की स्थिरता तथा व्यापकता संपादन करने के लिये मन पर भगवत्स्वरूप अंकित हो जाना चाहिये। फिर बाहर-भीतर परमात्मा ही होते हैं। गोपिकाओं के लिये इधर-उधर कृष्ण ही कृष्ण थे, क्यों? गोपिकाओं का चित्त कृष्णप्रेम से द्रवीभूत हो गया था। निराकार का ज्ञान-प्राप्त ज्ञानी में भी साकार रूप को पूजने की प्रवृत्ति होती है। परमार्थ में अद्वैत सत्य है, परंतु भक्ति के लिये तो द्वैत ही होता है। भक्ति श्रेष्ठ है। अद्वैत ज्ञान हो जाने पर अद्वैतभाव खतरनाक नहीं होता। ज्ञान के बिना अद्वैतभाव खतरनाक ही होता है। भक्ति के लिये कल्पित द्वैत अद्वैत से सुन्दर और श्रेष्ठ है। जब तक ज्ञान नहीं होता, तभी तक दुःख है। स्वप्न में व्याघ्र द्वारा खाये जाने का भयजनित दुःख जागने से नष्ट होता है। ज्ञान हो जाने पर भक्ति के लिये कल्पित-किया हुआ द्वैत अद्वैत से अधिक आनंद-दायक होता है। परमात्मा की उपासना भेद-भाव तथा अभेद-भाव दोनों प्रकार से होती है। गीता में कहा है—

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।

एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥

अर्थात्—मुझ विराट्-स्वरूप परमात्मा को ज्ञानयज्ञ के द्वारा पूजन करते हुए एकत्वभाव से अर्थात्—जो कुछ है, सब वासुदेव ही है—इस

भाव से उपासते हैं और दूसरे पृथक्त्व अर्थात् स्वामी-सेवक भाव से और कोई बहुत प्रकार से भी उपासते हैं। ज्ञानी परमात्मा से अलग किसी भी वस्तु को नहीं देखता, नहीं मानता। भक्ति से ज्ञान होने पर कोई इच्छा नहीं रहती। भागवत में भगवान् उद्धव से कहते हैं—‘श्रेष्ठ आचरण वाले तथा नियमपूर्वक मेरी भक्ति करने वाले मोक्ष को भी नहीं चाहते।’ एक भक्त कहता है—‘भगवन् मुझे वृन्दावन का गीदड़ ही बना देना। मुझे मुक्ति नहीं चाहिये।’ ज्ञानी की अभेद-दृष्टि होती है, परन्तु व्यवहार में ज्ञानी भेद-भाव से भक्ति कर सकता है। किसी भी दृष्टि से अमृतपान करने से जीव अमर हो जाता है। उसी प्रकार परमात्मा को किसी भी भाव से स्मरण करने से कल्याण होता है। यशोदा के समान पूतना भी उत्तम गति को प्राप्त हुई। वस्तु-शक्ति ज्ञान की अपेक्षा नहीं रखती। आग को न जानने पर भी वह जलाती ही है। जान या अनजान से भक्ति सफल होती है। ब्रह्म-दृष्टि से पत्नी-सेवन भी ब्रह्मसेवन ही है। सब जगत् ब्रह्म है। यद्यपि ऐसा ही है तथापि जगत् तथा अवतार में बड़ा भेद है। जगत् सावरण ब्रह्म है, परन्तु राम कृष्णादि अवतार निरावरण ब्रह्म है। मेघ से सूर्य ढक जाता है। नेत्र के सामने चश्मे का परदा है और मेघ का भी परदा है। मेघ का आवरण कम दिखाता है, परन्तु चश्मे का आवरण अधिक दिखाता है। जगत् तमोगुणी है और अवतार दिव्य लीला-शक्ति-सम्पन्न है। साकार में दिव्य रूप प्रकट होता।

तृतीय धर्मोपदेश

१०-९-४९

(३)

जो परमात्मा के साकार स्वरूप विष्णु, शिव और राम कृष्णादि अवतारों में से किसी भी रूप का भजन करता है वह कल्याण का भागी होता है। जिस प्रकार विष्णु के अवतार होते हैं, उसी प्रकार भगवान् शंकर के भी अवतार होते हैं। जन-साधारण विष्णु के अवतारों से तो परिचित हैं परन्तु शंकर के अवतारों से सामान्य जनता किसी सीमा तक अनभिज्ञ ही है। शंकर के सैकड़ों अवतार हो चुके हैं। रुद्रावतार, हनुमान्, दुर्वासा, भील अवतारादि शंकर के ही अवतार थे। जगद्गुरु श्री शंकराचार्य भी शंकर के अवतार थे। कूर्मपुराण, शिवपुराणादि ग्रन्थों में श्री शंकराचार्य के अवतार का विस्तृत वर्णन है।

बौद्ध युग में वैदिक धर्म का उच्छेद-सा हो गया था। अधिकांश लोग अधर्मवादी तथा शून्यवादी बन गए थे। ईश्वरवाद तथा परलोकवाद के प्रति लोगों की आस्था उठ-सी गई थी। वर्णाश्रमव्यवस्था का लोप-सा हो गया था। लोग शुष्क तर्कावलम्बी हो गये थे। शिखा-सूत्र से रहित और संध्या गायत्री से दूर, यह था उस जमाने का हाल। तांत्रिक मांत्रिकों का बोलबाला-सा हो गया था। वैदिक कर्म-कांड की निन्दा की जाती थी और हँसी उड़ाई जाती थी। यज्ञ-यागादि बंद हो गए थे। बौद्धों का प्रलाप था—‘अब वैदिक धर्म का कोई उद्धार नहीं कर सकता।’

यज्ञों के बन्द होने से देवताओं को यज्ञ-भाग नहीं मिल रहा था,

इससे देवता शक्ति-हीन हो गए। वे सब मिलकर कैलाशपति भगवान् शंकर की शरण में गये और बोले—‘हे देव-देव महादेव, आप शरणागतवत्सल हैं। हमारी प्रार्थना सुनो। लोग वेद के निन्दक तथा पाखण्डी हो गये। ज्ञान-वैराग्य की बातें दुर्लभ-सी हो गयीं। वैदिक धर्म का पुनरुद्धार आप-ही कर सकते हैं।’ शंकर ने पार्वती से कहा—‘निवृत्ति मार्ग वैराग्य ज्ञान-ध्यान पूर्वक होता है। प्रवृत्ति मार्ग में यज्ञ-याग तथा दान किया जाता है। निवृत्ति मार्ग मुझे प्राणों से और तुमसे भी प्यारा है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने के लिये, दुष्टों का नाश करने के लिए और धर्म की स्थापना के लिए मैं शंकराचार्य नाम से परमहंस पुरुष शरीर धारण करूँगा।’

ध्यान रहे, विष्णु के अवतार प्रवृत्ति मार्गी और शंकर के अवतार निवृत्ति मार्गी होते हैं। शंकर ने कार्तिक से कहा—“तुम वेदोक्त कर्म का प्रचार करना और मैं संन्यासी बनकर ज्ञानमार्ग का प्रचार करूँगा।” कार्तिक जन्म लेकर कुमारिल भट्ट के नाम से बौद्ध पाठशाला में पढ़ने लगे। कुमारिल भट्ट एक दिन राजा सुधन्वा—जो इन्द्र के अवतार थे—की सभा में गये और कोयल को लक्ष्य कर राजा को उपदेश दिया—‘हे कोयल, यदि मलिन कौए से तुम्हारा सम्बन्ध न हो, तो तुम प्रशंसनीय हो जाओगी। वेद के निन्दक का संग नहीं करना चाहिये।’ राजा और सभा में बैठे हुए बौद्ध कुमारिल भट्ट के भाव को समझ गये। कुमारिल ने बौद्धमत का खण्डन और वैदिक मत का मण्डन किया। राजा ने कहा—‘पहाड़ के शिखरपर से गिरने पर भी जिसको कोई चोट नहीं आयेगी, उसी का मत मान्य किया जायेगा।’ बौद्ध पंडित डर गये। कुमारिल पहाड़ के शिखर पर चढ़ कर बोले—‘वेद प्रमाण हैं तो मेरे नीचे गिरने से कोई क्षति नहीं है।’ यह कह कर वह नीचे गिर पड़े, परन्तु किसी प्रकार की चोट नहीं आई। राजा ने कहा—‘अब कुमारिल भट्ट का ही मत मानना चाहिये।’ बौद्धों ने कहा—‘ऐसा तो जादू मंत्र से होता है।’ राजा को फिर संदेह हुआ। राजा ने घड़े को सभा में रखवा कर कहा—‘बताओ, इस घड़े में क्या है?’ बौद्ध नहीं बता सके। उन्होंने राजा

से कहा कि हम कल बतायेंगे। बौद्धों को मालूम हो गया कि राजा ने घड़े में सर्प रक्खा है। सूर्य ने कुमारिल को बताया कि 'घड़े में शेषशायी विष्णु भगवान् का शालिग्राम बताना।' दूसरे दिन सभा में राजा ने फिर पूछा कि घड़े में क्या है? बौद्धों ने कहा कि इसमें सर्प है। कुमारिल भट्ट ने कहा कि इसमें सर्प पर शयन करने वाले विष्णु भगवान् के शालिग्राम हैं। जब घड़े का मुँह खोल कर देखा तो सर्प शालिग्राम के रूप में परिणत हो गया था! उसी समय आकाशवाणी हुई कि 'यह ठीक है, सत्य है।' राजा सुधन्वा के साथ कुमारिल भट्ट ने वेदोक्त कर्म का प्रचार किया। शंकर ने राजा सुधन्वा से स्वप्न में कहा कि शिव की स्थापना करो। राजा ने शिव की स्थापना की। केरल देश में पूर्णा नदी के किनारे पर कालटी नामक ग्राम में शिवगुरु नामक ब्राह्मण रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम सती था। पति-पत्नी दोनों धर्मात्मा थे। कोई सन्तान न होने से दोनों शिव की आराधना करने लगे। एक दिन शंकर ने दर्शन देकर शिवगुरु से कहा—'वर माँग।' शिवगुरु ने कहा—'मुझे पुत्र दो। एक ही दो, परन्तु वह आप के जैसा हो।' शंकर बोले—'तथास्तु।' शिवगुरु की पत्नी सती शिव-तेज से आपन्न हो गई और वेद में ब्रह्मा, ज्ञान में शंकर और दया में विष्णु के समान श्री शंकराचार्य प्रकट हुए।

शंकराचार्य को प्रथम वर्ष में देश-भाषा का अर्थात् संस्कृत का ज्ञान हो गया। दूसरे वर्ष में उन्हें वर्ण-ज्ञान हुआ और पुराण कंठस्थ हो गये। तीसरे वर्ष में वह गुरुगृह में विद्या पढ़ने के लिए गए। तभी पिता शिवगुरु का देहान्त हो गया। चौथे वर्ष में उनमें सर्वशक्तित्व आ गया। पाँचवें वर्ष में उनका उपनयन संस्कार हुआ और ब्रह्मचारी के रूप में भिक्षा लेने जाते और भिक्षा गुरु को दे देते। एक दिन एक निर्धन ब्राह्मण के घर भिक्षा लेने गए और भिक्षा माँगी। ब्राह्मणी ने बाहर आकर देखा तो शंकराचार्य के तेजस्वी शरीर को देखकर वह चकित हो गई। ब्राह्मणी के घर में भिक्षा देने के लिए कुछ भी न था। वह मन में कहने लगी—'भगवान्! कैसी अभागिनी हूँ मैं। अतिथि विष्णुरूप है, पर घर में कुछ भी नहीं। ऐसे तेजस्वी अतिथि को खाली हाथ लौटा देने से तो मुझे

बड़ा पाप लगेगा।' ऐसा सोचने से उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। शंकराचार्य ने उससे पूछा—'रुदन क्यों?' उसने अपनी दरिद्रता का हाल कह सुनाया। शंकराचार्य ने कहा—'घर में जो भी हो, दो।' ब्राह्मणी ने सूखे सात आँवले शंकराचार्य की झोली में डाले! शंकराचार्य ने लक्ष्मी का आवाहन किया और ब्राह्मणी के घर में सुवर्ण के आँवलों की वर्षा कराई। छठे वर्ष में शंकराचार्य वेदशास्त्र-सम्पन्न हो गये। सातवें वर्ष में वह अपने घर लौट आये। उनकी अतुलनीय विद्वत्ता से राजा लोग उनके पास आने लगे। एक दिन सप्तर्षि शंकराचार्य का दर्शन करने आए। माता सती ने उनका सत्कार किया। माता ने उनसे पूछा—'भगवन् इसकी आयु कितनी है?' सप्तर्षि ने कहा—'इस की आयु आठ वर्ष की है।' पुत्रकी अल्पायु सुनकर माता बड़ी दुखी हुई। सप्तर्षियों ने कहा—'आठ वर्ष की आयु हम और देते हैं।' यह कहकर सप्तर्षि चले गये। शंकराचार्य ने माता से कहा—'मैं अब संन्यासी बनूँगा।' इससे माता के हृदय पर बड़ा आघात हुआ और वह रोने लगी। शंकराचार्य ने माता को समझाते हुए कहा—'मातृ देवि, यह रुदन क्यों? शोक करने से कोई लाभ नहीं। संसार असार है। इसमें कुछ भी स्थिर नहीं है। जीव के कितने ही जन्म हो चुके हैं और कितने ही जन्म आगे होते रहेंगे, जीव के हजारों माता पिता हो चुके हैं और हजारों आगे बनते रहेंगे। स्त्री पुत्र भी सैंकड़ों हो चुके हैं और आगे चलकर सैंकड़ों होंगे। किसको अपना कहें? कौन किसका है? कोई किसी का नहीं है। मोह के वश में होकर जीव 'मैं और मेरा' कहता रहता है और अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है। दुःख का कारण अज्ञान है। सार-वस्तु केवल ब्रह्म है, और सब झूठ है। वेद ने यही निर्णय किया है। मैं संन्यास लेकर ज्ञानमार्ग का प्रचार करूँगा। मुझे संन्यास धारण करने की आज्ञा दो।' परंतु ममतामयी माता ने शंकराचार्य को संन्यास धारण करने की आज्ञा नहीं दी। शंकराचार्य सोच में पड़ गये कि माता से संन्यास की आज्ञा कैसे प्राप्त करें? एक दिन माता पूर्णा नदी पर स्नान करने के लिये गई। साथ में शंकराचार्य भी गये। नदी में शंकराचार्य के पैर को मगरमच्छ ने पकड़ लिया। माँ

बाहर रोती-चिल्लाती रही। शंकराचार्य ने कहा—‘यदि तुम मुझे संन्यास की आज्ञा दो तो मगरमच्छ मुझे छोड़ देगा।’ माता ने संन्यास की आज्ञा दे दी। मगरमच्छ ने शंकराचार्य का पैर छोड़ दिया। वह बाहर निकल आये और माता से बोले—‘अब मैं गुरु की खोज में जाता हूँ।’ और शंकराचार्य घर छोड़कर अपने अवतार-कार्य में अग्रसर हुए।

चतुर्थ धर्मोपदेश

११-९-४९

(४)

मनुष्य के दो भेद हैं—ब्रह्मचारी और गृहस्थी। इसी प्रकार परमात्मा के दो स्वरूप हैं—मायारहित निर्गुण और मायासहित सगुण। परमात्मा माया से अवतार धारण करते हैं। शंकराचार्य शिव के निवृत्ति-मार्गी अवतार थे।

माता की सेवा का प्रबन्ध कराकर शंकराचार्य नर्मदा के किनारे श्री गोविन्दाचार्य के पास आये। गोविन्दाचार्य नर्मदा के किनारे एक पहाड़ की कन्दरा में रहते थे। वे परमहंस थे और एकान्त में ब्रह्मानुसन्धान करते थे। गोविन्दाचार्य ने शंकराचार्य से पूछा—‘तुम कौन हो?’ शंकराचार्य ने नम्रतापूर्वक कहा—‘मैं पृथ्वीरूप नहीं हूँ, जलरूप नहीं हूँ, अग्निरूप नहीं हूँ, वायुरूप नहीं हूँ, आकाश रूप नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ, बुद्धि नहीं हूँ, संघात भी नहीं हूँ। हे स्वामिन् वेद में नेति नेति कहकर जिसका प्रतिपादन किया है, वह शिव कल्याण-स्वरूप हूँ, चिदान्दरूप हूँ और मन तथा वाणी से परे हूँ।’

गोविन्दाचार्य सब कुछ समझ गये, बोले—‘आप साक्षात् शंकर के अवतार हैं।’ शंकराचार्य ने आठ वर्ष की अवस्था में गोविन्दाचार्य से संन्यास-दीक्षा ली और आत्मा में ब्रह्मरूपता को ग्रहण किया। उन्होंने गुरु के पास वेदान्त का अध्ययन तथा मनन किया। चातुर्मास में नर्मदा में बाढ़ आई तो जल गोविन्दाचार्य की गुफा में आने लगा। शंकराचार्य ने

सारा जल अपने कमण्डलु में भर लिया। व्यास ने गोविन्दाचार्य से यह पहले ही बता दिया था कि नर्मदा का जल कमण्डलु में भरने वाले को ईश्वर का अवतार समझना। गोविन्दाचार्य ने शंकराचार्य से कहा—‘अब तुम काशी में जाकर ज्ञानमार्ग का प्रचार करो।’

शंकराचार्य काशी में गये। वहाँ उन्होंने विश्वनाथ के दर्शन किये और गंगा देवी की स्तुति की। एक दिन वह एकान्त में बैठे हुए थे। एक ब्राह्मण ने पास आकर कहा—‘स्वामिन्, मेरा चित्त संसार में नहीं लगता। मैं आपकी शरण में हूँ। मुझे मार्ग बताइये।’ पुण्य कर्म से ही संसार से वैराग्य होता है। शंकराचार्य ने उसको संन्यास की दीक्षा दी और उसका नाम सनन्दन रक्खा। शंकराचार्य मणिकर्णिका घाट से विश्वनाथ का दर्शन करने के लिये जा रहे थे। मार्ग में एक चाण्डाल कुत्तों को साथ लिये आ रहा था। शंकराचार्य ने उसे मार्ग से जरा हट जाने के लिये कहा। चाण्डाल बोला—‘आपने मेरे शरीर से हटजाने के लिये कहा या आत्मा से? यदि शरीर से कहा है, तो जैसे आपका शरीर है वैसे मेरा शरीर है। यदि आत्मा से हट जाने के लिये कहा है, तो आत्मा तो मेरी और आप की एक ही है। फिर हटो कैसे कहा? फिर यह मुक्ति-धाम काशी है और आप ज्ञानी संन्यासी हैं। फिर सारे अनर्थ का मूल यह भेदभाव आप क्यों कर रहे हैं? क्या ज्ञानी भी माया से मोहित होते हैं?’

शंकराचार्य समझ गये कि यह चाण्डालरूप में ज्ञानी है। वह बोले—‘मैं, तुम और सारा जगत् ब्रह्म ही है। सुवर्ण के सारे जेवर सुवर्ण ही हैं। मिट्टी के सारे बर्तन मिट्टी ही हैं। वैसे ही सारा जगत् ब्रह्म है। सब परमेश्वररूप हैं। एक ब्रह्म के सिवा और कुछ भी नहीं है।’ चाण्डाल ने कहा—‘फिर यह भेद क्यों?’ शंकराचार्य ने कहा—‘त्रिगुणात्मक माया से यह भेद है, परमार्थ से नहीं है। स्वप्न में भेदभाव है, पर जागने पर कुछ भी नहीं। सब एक हैं। वास्तव में भेद नहीं है। एक ब्रह्म के सिवा और कुछ भी नहीं है। ऐसी जिसकी बुद्धि है, वह कोई भी क्यों न हो, ब्रह्मरूप ही है।’ उसी समय चाण्डाल का रूप बदल कर विश्वनाथ चार वेदों के साथ प्रकट हुए और बोले—‘तुम गंगा के किनारे प्रस्थान-त्रय का

(उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र) भाष्य बनाओ।' यह कहकर विश्वनाथ अदृश्य हो गये। शंकराचार्य ने एकान्त में बैठकर प्रस्थान-त्रय का भाष्य लिखा, जिसको पढ़ने से ब्रह्म का यथावत् ज्ञान होता है। उन्होंने अपने भाष्य में अद्वैत का प्रतिपादन किया है। गंगा के एक ओर सनंदन बैठे हुए थे। शंकराचार्य ने सनंदन को पुकारा—'जल्दी आओ।' उस समय नौका नहीं थी और सनंदन गंगा में पैर नहीं डुबोते थे। वह बड़े धर्म-संकट में पड़ गये। सनंदन ने गंगा से प्रार्थना की—'यदि मेरी तुम में निष्ठा है तो मुझे इस समय धर्म-संकट से छुड़ाओ।' प्रार्थना के साथ ही गंगा से कमल-पत्र निकल आये और उन पत्रों पर पाँव रख कर सनंदन शंकराचार्य के पास पहुँच गये। उस दिन से सनंदन पद्मपादाचार्य कहलाये। शंकराचार्य का शिष्यपरिवार बढ़ने लगा। उनका एक शिष्य तोटकाचार्य बड़ा गुरुभक्त था। वह पढ़ने के लिये शंकराचार्य के पास बैठता था। तोटकाचार्य कपड़े धोने के लिये गया। इधर पढ़ने का समय हो गया। परन्तु शंकराचार्य तोटक की प्रतीक्षा करते रहे। पद्मपादाचार्य ने कहा—'भगवन्! तोटक बुद्धिमान् नहीं है। फिर उसके लिये समय का अपव्यय क्यों?' शंकराचार्य समझ गये कि पद्मपादाचार्य को अपनी विद्वत्ता पर अभिमान हो गया है। उसका अभिमान दूर करने के लिये शंकराचार्य के आदेश से सरस्वती तोटक की जीभ पर विराजमान हो गई। तोटक श्लोक कहता हुआ ही आया। सब चकित हो गये। शंकराचार्य ने पद्मपादाचार्य से कहा—'तुम तोटक के श्लोक का अर्थ लगाओ।' परन्तु पद्मपादाचार्य अर्थ नहीं कर सके और उनका विद्वत्ता का अभिमान जाता रहा।

एक दिन शंकराचार्य शिष्यों को ब्रह्मसूत्र का भाष्य पढ़ा रहे थे। एक वृद्ध ब्राह्मण आया और शंकराचार्य से बोला—'तुम कौन हो? यह क्या शास्त्र है?' शिष्यों ने ब्राह्मण से कहा—'यह हमारे गुरु और भगवान् हैं। यह अद्वैतवाद के मानने वाले हैं और ब्रह्मसूत्र का भाष्य करने वाले हैं।' ब्राह्मण ने कहा—'शिष्यों, यह तुम क्या कहते हो? इसने ब्रह्म-सूत्र का भाष्य किया है! नहीं, यह नहीं हो सकता। व्यास के तात्पर्य को समझना

ही कठिन है। एक सूत्र मुझे बताओ। जीव शरीर छोड़कर परलोक कैसे जाता है?’ इस प्रश्न पर शंकराचार्य और ब्राह्मण में दस दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। वह ब्राह्मण व्यास जी थे। सनंदन ने प्रार्थना की—‘भगवन्, साक्षात् शंकर और साक्षात् नारायण दोनों का झगड़ा कौन मिटायेगा?’ व्यास जी अपने रूप में प्रकट हुए। शंकराचार्य ने व्यास जी को नमस्कार किया और कहा—‘आप कलियुग के दोषों को दूर करने वाले हैं।’ व्यास ने शंकराचार्य से कहा—‘आप धन्य हैं! अद्वैत मार्ग के प्रकाशक, साक्षात् शंकर हैं। मैं कैलास में शंकर की सभा में गया था। वहाँ सुना कि शंकर ने शंकराचार्य का अवतार लेकर ब्रह्मसूत्र का भाष्य किया है। मैंने ये सूत्र बनाये हैं। आपने भाष्य ठीक किया है। यह शंकर के सिवा और कोई नहीं कर सकता।’ यह कह कर व्यास चलने लगे तो शंकराचार्य ने कहा—‘दो घड़ी और ठहरिये। मेरी केवल सोलह वर्ष आयु है। दो घड़ियाँ शेष हैं। आपकी उपस्थिति में शरीर छूट जाये, तो अच्छा ही है।’ व्यास ने कहा—‘ऐसा मत कीजिये। अभी तो तुमने केवल प्रस्थान-त्रय का भाष्य किया है परंतु उसका प्रचार नहीं किया। अद्वैत मार्ग के प्रचार के लिये आप और ठहरें। यदि आप नहीं ठहरेंगे तो लोग मुमुक्षु नहीं बनेंगे। आप ज्ञानमार्ग का प्रचार करें। आपकी पहले आठ वर्ष की आयु थी। सप्तर्षियों ने आठ वर्ष की आयु दी और सोलह वर्ष की आयु हो गई। मैं शंकर की आज्ञा से सोलह वर्ष की आयु और देता हूँ। अब आप अपना अवतार-कार्य कीजिये। आपका भाष्य अमर होगा।’ यह कह कर व्यास चले गये।

शंकराचार्य शिष्यों के साथ प्रयाग में आये। वहाँ कुमारिल भट्ट त्रिवेणी में कुशाग्नि में शरीर को जला रहे थे। शंकराचार्य ने उनको ब्रह्मसूत्र का भाष्य-दिखाया और कहा—‘तुम इस पर वार्तिक बनाओ।’ कुमारिलभट्ट ने ब्रह्म-सूत्र के प्रथम सूत्र ‘अथातो ब्रह्मजिज्ञासा’ का भाष्य पढ़कर कहा—‘आपके भाष्य की दो पंक्तियों पर आठ हजार श्लोक बनाये जा सकते हैं।’ शंकराचार्य ने कहा—‘इस पर वार्तिक बनाओ।’ कुमारिल भट्ट ने कहा—‘मैं तो कुशाग्नि में धीरे-धीरे शरीर को जलाकर

के पापों का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। बौद्ध पाठशाला में पढ़कर मैंने बौद्धों का ही खण्डन किया। और मैंने ईश्वर में प्रमाण होने में सन्देह किया था। इन्हीं पापों का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। माहिष्मती नगर में मेरा शिष्य मण्डन मिश्र है। वह कर्मकाण्डी है। ज्ञान और ईश्वर को वह नहीं मानता। वहाँ जाकर शास्त्रार्थ में उसको परास्त कीजिए। फिर वह आपका अनुगामी बनकर आपके भाष्यों पर वार्तिक बनाएगा।' यह सुन कर शंकराचार्य माहिष्मती नगर की ओर रवाना हुए।

पंचम धर्मोपदेश

१२-९-४९

(५)

कल की कथा में यह कहा जा चुका है कि कुमारिल भट्ट के कथनानुसार शंकराचार्य मण्डन मिश्र से मिलने के लिए माहिष्मती नगर की ओर रवाना हुए। वहाँ पहुँच कर वह नगर के बाहर एक जलाशय पर ठहरे। संयोग से मण्डन मिश्र की दासी ही जलाशय पर आई। शंकराचार्य ने उससे पूछा—‘मण्डन मिश्र का घर नगर में कहाँ है?’ दासी ने कहा—‘जिसके दरवाजे पर पिंजरे में बंद तोता-मैना शास्त्रार्थ कर रहे हों, वही मण्डन मिश्र का घर समझिए।’ शंकराचार्य नगर में चल पड़े और जिसके दरवाजे पर पिंजरे में बंद तोता-मैना शास्त्रार्थ कर रहे थे, उस मकान के सामने ठहर गए। मैना तोते से पूछ रही थी—‘वेद स्वतः प्रमाण है या परतः प्रमाण? कर्म का फल देने वाला कर्म ही है, या ईश्वर? जगत् नित्य है या अनित्य?’ मकान का दरवाजा भीतर से बंद था। उस दिन मण्डन मिश्र के पिता का श्राद्ध था। शंकराचार्य अपने योगबल से मकान के उपर से होकर भीतर गए। दरवाजा ज्यों का त्यों बंद था। घर में उस समय मण्डन मिश्र, व्यास और जैमिनि बैठे हुए थे। मण्डन कर्मकाण्डी मीमांसक था और ज्ञानमार्ग या संन्यास को नहीं मानता था। संन्यास में कर्मकाण्ड का त्याग करना होता है। इसलिये शंकराचार्य को अपने घर में देखकर मण्डन नाराज हुआ। शंकराचार्य का स्वागत सत्कार न कर उसने उपहासात्मक स्वर में शंकराचार्य से

पूछा—‘कुतो मुण्डी?’ इस प्रश्न के संस्कृत में दो अर्थ होते हैं। मुण्डी संन्यासी को कहते हैं। मण्डन के प्रश्न का अभिप्राय था कि संन्यासी, तुम कहाँ से आये? परन्तु शंकराचार्य ने मण्डन को छकाने के लिए उसके प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर उस प्रश्न का जो दूसरा अर्थ होता है, उसका उत्तर दिया। उस प्रश्न का दूसरा अर्थ होता है—‘मुण्डन कहाँ से किया?’ शंकराचार्य ने उत्तर दिया—‘गले से ऊपर मुण्डन किया।’ मण्डन ने जोर देकर कहा—‘मेरे द्वारा तुम्हारा मार्ग पूछा गया है।’ दरवाजा बन्द होने से मण्डन जानना चाहता था कि यह संन्यासी किस मार्ग से आया है। परन्तु शंकराचार्य मण्डन को पहले आड़े हाथों लेना चाहते थे। उन्होंने फिर भी मण्डन के प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर उससे ही प्रश्न किया—‘जब तुम्हारे द्वारा मेरा मार्ग पूछा गया, तो उस मार्ग ने तुमसे क्या कहा?’ मण्डन कुछ चिढ़कर बोला—‘माता मुण्डा।’ मार्ग ने कहा कि तुम्हारी माता मुण्डित है। शंकराचार्य ने कहा—‘तुम्हारी माता मुंडित है, यह क्या मार्ग ने तुमसे कहा?’ इससे मण्डन क्रोधित होकर बोला—‘तुमने शराब तो नहीं पी ली।’ शंकराचार्य ने कहा—‘शराब पीली नहीं, सफेद होती है।’ मण्डन ने पूछा—‘क्या तुमने देखी है?’ शंकराचार्य बोले—‘मैंने तो देखी है, परन्तु तुमने तो उसका रसास्वाद भी किया है।’ मण्डन बोला—‘जिस माता के उदर से उत्पन्न हुए, जिसने पालन-पोषण किया, उसी की तुम निन्दा करते हो?’ मण्डन गृहस्थी था और शंकराचार्य संन्यासी। संन्यासी के लिये सब स्त्रियाँ मातृस्वरूप हैं। शंकराचार्य ने कहा—‘मैंने तो उसकी निन्दा की, परन्तु तुम तो उससे रमण करते हो।’ इस वितंडावाद से हतप्रभ होकर मण्डन जोश में आकर बोला—‘द्वारपाल को दरवाजा खोलने के लिए न कहकर तुम इस घर में चोर की तरह कैसे आये?’ शंकराचार्य ने कहा ‘भिक्षुक को अन्न न देकर तुम चोर की तरह अकेले भोजन कैसे कर रहे हो!’ जब मामला बहुत बिगड़ता हुआ देखा, तो व्यास जो अब तक वहाँ शांत बैठे थे, मण्डन से बोले—‘तुम खोटा वचन कह रहे हो। अतिथि का अनादर नहीं करना चाहिए।’ मण्डन ने व्यास से कहा—‘कहिए मैं क्या करूँ?’ व्यास ने कहा—‘अतिथि अभ्यागत

विष्णुरूप हैं। इनका निमन्त्रण करो।' व्यास के कहने से मण्डन ने शंकराचार्य को बैठने के लिए आसन दिया और कहा—'आप मेरे यहाँ भोजन करें।' शंकराचार्य ने कहा—'मुझे पहले शास्त्रार्थ की भिक्षा चाहिए। भोजन फिर करूँगा। मुझे पहले वचन दो कि तुम मुझसे शास्त्रार्थ करोगे।' मण्डन ने कहा—'मैं शास्त्रार्थ करूँगा।' फिर शंकराचार्य ने वहाँ भोजन किया। भोजन के पश्चात् यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि शास्त्रार्थ में मध्यस्थ किसको बनाया जाय। व्यास जी ने कहा—'मण्डन की धर्मपत्नी शारदा मध्यस्थ होगी।' इस प्रस्ताव को शंकराचार्य और मण्डन दोनों ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद व्यास और जैमिनि चले गये। तब दोनों शास्त्रार्थ करने बैठे तो शारदा ने दोनों के गले में एक-एक माला पहिना दी और कहा—'जो शास्त्रार्थ में परास्त होगा, उसकी माला सूख जायेगी।' यह कह कर वह घर के कार्यों में लगी रही।

मण्डन की प्रतिज्ञा थी कि वेदवाक्य परब्रह्म का प्रतिपादन नहीं करते। वेद का तात्पर्य केवल कर्मकाण्डमात्र है। आत्मा-परमात्मा में अभेद की स्थापना कल्पनामात्र है। शंकराचार्य का कथन था कि वेद ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। वेद में कर्म और ज्ञान दोनों हैं। ज्ञान से ही मुक्ति होती है। उपाधि-रहित आत्मा और परमात्मा दोनों एक हैं। शंकराचार्य ने कहा—'शास्त्रार्थ में तुम हारोगे, तो तुम्हें संन्यास धारण करना होगा।' मण्डन ने कहा—'मुझे स्वीकार है। परंतु यदि तुम हारोगे तो फिर?' शंकराचार्य ने कहा—'मैं हारूँगा, तो मैं तुम्हारी तरह गृहस्थ बनूँगा।' मण्डन ने कहा—'कर्म से मोक्ष (स्वर्ग) मिलता है। आवागमन होता रहेगा।' वह वेदांत के वचन कर्म पर लगाता रहा। वह बोला—'जीव और ईश्वर एक है, यह आपका सिद्धान्त है, परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है। नेत्र के प्रमाण से फूल लाल है, यह सिद्ध होता है।' शंकराचार्य ने कहा—'जीव और ईश्वर एक है, इसका प्रमाण वेद के महावाक्य हैं। सामवेद में उद्दालक ने अपने पुत्र से कहा है—'तत्त्वमसि यही प्रमाण है।' मण्डन बोला—'तत्त्वमसि—यह वेदवाक्य अभेद का प्रतिपादन नहीं करता। तत्त्वमसि का अर्थ तत् त्वम् असि (वह तू है) नहीं है, प्रत्युत तस्य त्वम्

असि (उसके तुम हो) है। यह केवल उपासना के लिये है।' शंकराचार्य बोले 'अयमात्मा ब्रह्म (यह आत्मा ब्रह्म है।) या अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ) इन वेदवाक्यों का क्या अर्थ है?' मण्डन बोला—'यह तो केवल जप के लिये है, अर्थ कुछ नहीं है।' शंकराचार्य ने कहा—'अर्थ प्रतीत होता है तो अर्थ ग्रहण करना चाहिये।' मण्डन बोला—'जीव में परमात्मदृष्टि से उपासना का अर्थ अब्रह्म में ब्रह्म की भावना करना है। वेद-वाक्य तो केवल उपासना के लिये हैं।' शंकराचार्य ने कहा—'उपासना बताने के लिये उपासीत' (उपासना करे) आदि पद नहीं हैं अतः वाक्य अभेद-परक है।' मण्डन ने कहा—'साम्य तो है, परंतु अभेद नहीं है।' शंकराचार्य बोले—'आत्मा और परमात्मा चेतनत्व से समान है या सर्वज्ञत्व से? चेतनत्व से समान है, तो दोनों का एकत्व सिद्ध होता है, सर्वज्ञत्व से जीव अब्रह्म सिद्ध होता है।'।

एक बनिये के पास काफी धन था। उसके चार लड़के थे। बनिये ने शिखरवाला मंदिर बनाया और धन रख दिया। उसने बही में लिखा—“शिखर में चार लाख रुपया, वैशाख शुक्ल एकादशी दिन के बारह बजे,” इसके बाद बनिया मर गया। लड़कों ने अपना धन चट कर दिया तो पिता की बही देखी। शिखर में चार लाख रुपया पढ़कर उन्होंने शिखर को ढाया। परन्तु कुछ न मिला। लड़कों ने पिता के एक मित्र को बही दिखाई। मित्र दस बजे मन्दिर के पास पहुँचा और लड़कों से बोला—‘मन्दिर का शिखर जैसा था वैसा फिर बनाओ।’ शिखर बनाया गया। बारह बजे शिखर की छाया जिस जगह पड़ी, वहाँ खोदकर देखने की मित्र ने सलाह दी। वहाँ जमीन खोदी तो रुपया मिला। गहन-गूढ़ गंभीर बातों को गहराई से समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

शंकराचार्य ने मण्डन से कहा—‘मेरे प्रश्न का जरा सोचकर उत्तर दो।’ इतने में समय हो जाने से शारदा ने दोनों को भोजन करने के लिये बुलाया।

षष्ठ धर्मोपदेश

१२-९-४९

(६)

केवल कर्मकाण्डी पुरुषों को ज्ञान कराने के लिये भगवान् शंकराचार्य का अवतार हुआ। मण्डन मिश्र केवल कर्मकाण्डी था। संन्यासी शंकराचार्य मण्डन के घर में क्यों गये? केवल धर्मोपदेश करने के लिये। महात्मा जीवों का कल्याण करते हैं।

शास्त्रार्थ फिर प्रारम्भ हुआ। मण्डन ने कहा—‘जीव ब्रह्म रूप नहीं है।’ शंकराचार्य—‘जीव ब्रह्मरूप है। वेद के अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि घोषित कर रहे हैं कि आत्मा और परमात्मा में अभेद है।’ मण्डन—‘प्रत्यक्ष प्रमाण से जीव ब्रह्म सिद्ध नहीं होता। जीव का अनुभव है कि मैं ब्रह्म से भिन्न हूँ। वैदिक महावाक्य उपासनापरक न होते हुए भी अभेदपरक नहीं हैं। इनका कोई अर्थ नहीं है।’

शंकराचार्य—‘जैसे अभेद-ज्ञान के साथ भेद-ज्ञान का विरोध है, वैसे ही भेदपरक तथा अभेदपरक श्रुतियों में विरोध है। जीव और ब्रह्म में जो भेद प्रतीत होता है वह भेद ज्ञान-इन्द्रियों से होता है, परंतु ब्रह्म इन्द्रियों का विषय नहीं है। वह इन्द्रियों से परे है।’

मण्डन—‘मैं ब्रह्म से अलग हूँ। यह सबका अनुभव है। जीव भेद वाला है। इन्द्रियसम्बन्ध नहीं होने पर भी जीव और ब्रह्म के भेद का ज्ञान हो सकता है।’

शंकराचार्य—‘इन्द्रियों के बिना ज्ञान मानते हो, तो सब का ज्ञान

होना चाहिये। जो ज्ञान होता है वह इन्द्रियों से ही होता है।’

मण्डन—‘यह ठीक नहीं है। चित्त द्रव्य और आत्मा द्रव्य के संयोग-सम्बन्ध से आत्मा का ज्ञान होता है।’

शंकराचार्य—‘साक्षीस्वरूप से ज्ञान मानना पड़ेगा। जीव-ब्रह्म के भेद में प्रमाण साक्षी है क्योंकि अविद्यासहित जीव और मायासहित परमात्मा में भेद है। उपाधिरहित में अभेद है। (दस लट्ठू जले हुए हैं—लाल, हरे और नीले। दसों में बिजली एक ही है। रंग-भेद केवल काँच से है।) श्रुति उपाधिरहित आत्मा और परमात्मा में अभेद मानती है। भेद का प्रमाण अनुभव है और अभेद का प्रमाण श्रुति है। भ्रान्त अनुभव प्रमाण से श्रुतिप्रमाण प्रबल है—रज्जु में सर्पवत्। कुछ अँधेरे में रस्सी में सर्प का अनुभव होता है। परंतु ठीक तरह से देखने पर सर्पज्ञान दुर्बल प्रमाणित होता है और रज्जुज्ञान ही सत्य प्रमाणित होता है। श्रुति प्रमाण ही श्रेष्ठ है। एक मनुष्य काशी चला गया। काशिराज की हाथी पर सोने के हौदे में सवारी निकली। उस मनुष्य ने सवारी देखी। कुछ दिनों के बाद दूसरे राजा ने काशिराज पर चढ़ाई कर दी। काशिराज वेष बदल कर भाग निकला और उस गाँव में गया जहाँ के मनुष्य ने काशी में उसकी सवारी देखी थी। एक मनुष्य ने कहा कि यह काशिराज है। वह मनुष्य बोला—‘यह काशिराज नहीं हो सकता। काशिराज तो वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होता है।’ प्रत्यक्ष प्रमाण से वाक्य प्रमाण अधिक है। राजा की सामग्री और रंक की सामग्री में भेद था, परंतु व्यक्ति तो एक ही है।

मण्डन कुछ समझा। वह फिर बोला—‘प्रत्यक्ष प्रमाण से न सही, परन्तु अनुमान प्रमाण से जीव-ब्रह्म में भेद सिद्ध होता है। धुँएँ से अग्नि का अनुमान होता है, जीव अल्पज्ञ है और अल्पशक्ति है। यदि भेद नहीं है, तो जीव में ईश्वर के गुण होने चाहिये।’

शंकराचार्य—‘अनुमान से पारमार्थिक भेद या कल्पित भेद सिद्ध होगा? मिट्टी और घड़े में भेद कहाँ? मिट्टी और घड़े में कल्पित भेद है। मिट्टी तो एक ही है। अनुमान सदोष है।’

मण्डन—‘मीमांसा में ईश्वर और जगत् अलग हैं। जगत् कर्मों से

बनता है। हम तो सच्चा भेद मानते हैं।’

शंकराचार्य—‘माया से मायिक पदार्थों में भेद है, परन्तु माया आभास है, वास्तव में माया है ही नहीं। हम भी अनुमान कर सकते हैं—चेतनत्व से अभेद है। चेतनत्व को लेकर श्रुति अभेद मानती है। कल्पित भेद हम भी मानते हैं। माया उपाधि अलग है। घटाकाश और मठाकाश में आकाश एक ही है।’

एक वेदांती महात्मा भिक्षा माँगते समय शिवोऽहम् कहते थे। एक आदमी उस महात्मा से जलने लगा कि भिखारी होकर अपने को शिव-रूप बताता है। वह आदमी महात्मा से बोला—‘इधर आओ। तुम्हें शर्म नहीं आती है? तुम अपने को क्या मानते हो? भिखारी के मुँह से राजा होने की बात शोभा नहीं पाती। तुम अपनी तुलना कैलासपति से करते हो। आज से शिवोऽहम् न कहना।’ महात्मा ने कहा—‘हम दो मील से चलकर आये। पहले हमें जल पिलाओ, तो फिर बात करें।’ उस आदमी ने महात्मा को जल दिया। महात्मा बोले—‘यह जल नहीं गंगाजल पिलाओ।’ उस आदमी ने कमण्डलु में गंगाजल ला दिया। महात्मा ने कहा—‘नहीं, यह गंगाजल नहीं हो सकता। गंगाजल वह है जहाँ दो किनारे हैं, वृक्ष हैं, जल में मगरमच्छ है, और किनारे पर बड़े-बड़े शहर हैं। वह कमण्डलु का जल गंगाजल नहीं हो सकता।’ उस आदमी ने कहा—‘किनारा और कमण्डलु की उपाधि को छोड़ दो, तो फिर जल तो एक ही है।’ महात्मा ने कहा—‘इसी से हम शिवोऽहम् कहते हैं। हमारी दरिद्रता और कैलास के वैभव को छोड़ दो, तो शिव और हम एक ही हैं।’ जीव और ब्रह्म में माया से कल्पित भेद है, पारमार्थिक भेद नहीं।

सप्तम धर्मोपदेश

१३-९-४९

(७)

शंकराचार्य और मण्डन के शास्त्रार्थ में मण्डन का पक्ष यह था कि वेद केवल कर्मकाण्ड का ही प्रतिपादन करते हैं और जीव-ब्रह्म में प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण से भेद ही सिद्ध होता है। शंकराचार्य का कथन था कि वेद कर्म और ज्ञान दोनों का प्रतिपादन करते हैं और जीव-ब्रह्म में अभेद मानते हैं। वेद के महावाक्य आत्मा और परमात्मा में अभेद की घोषणा करते हैं। प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण से वेद प्रमाण ही श्रेष्ठ है।

मण्डन ने कहा—‘भेद और अभेद दोनों का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियाँ हैं। किसको ठीक माना जाय? कठवल्ली उपनिषद् में कहा है—‘एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। एक मीठे फल को खाता है और दूसरा साक्षीरूप है।’ यह श्रुति भेदपरक है। इससे अभेदपरक श्रुति का बाध होता है।’

शंकराचार्य—‘यदि श्रुति भेद को कहेगी तो वह अनुवादक हो जायेगी, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है कि आत्मा-परमात्मा में भेद है। जिस-बात को सब जानते हैं, उसी को श्रुति का जोर देकर कहना व्यर्थ ही है। वास्तव में इस श्रुति का लक्ष्य में तात्पर्य है।’

एक महात्मा गंगा के किनारे रहते थे। एक महाशय आये और महात्मा से बोले—‘हम भेद को सिद्ध करेंगे, तुम अभेद को सिद्ध करो।’ महात्मा ने नाई से हजामत कराई और नाई से कहा—‘हजामत बहुत

अच्छी बनाई। तुम तो ईश्वररूप हो।' नाई बोला—'यह आप क्या कह रहे हैं? मैं ईश्वर नहीं हूँ।' महात्मा ने उस महाशय से कहा—'भेद को तो नाई भी जानता है। इसको आप क्या सिद्ध करेंगे?' अभेद-ज्ञान ही सफल होता है, भेदज्ञान नहीं। वेद में कहा है कि जो ब्रह्म में भेद देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है। आत्मा परमात्मा में थोड़ा भी भेद करने वाले को सदा भय लगा रहता है।

मण्डन—'मीमांसा शास्त्र में कहा है कि दो श्रुतियों में विरोध हो तो जहाँ मेल हो, वही ठीक मानना चाहिये। प्रत्यक्ष प्रमाण से भी भेद ही प्रमाणित होता है।'।

शंकराचार्य—'भेद को कहने वाली श्रुति का अर्थ है बुद्धि और जीवात्मा एक शरीर में रहते हैं। एक कर्मफल का भोक्ता है और दूसरा कर्मफल का प्रकाशक है। यह श्रुति परमात्मा से आत्मा को पृथक् नहीं बताती, प्रत्युत बुद्धि से आत्मा को पृथक् बताती है।

मण्डन—'बुद्धि कैसे भोक्ता होगी? बुद्धि तो जड़ है।' शंकराचार्य—'यह ठीक है कि बुद्धि जड़ है परंतु उस में भोक्तृत्व हो जाता है। जैसे अदाहक लोहा अग्नि के सम्पर्क से दाहक बन जाता है, वैसे चेतन आत्मा के सम्बन्ध से जड़ बुद्धि में भी भोक्तापना आता है। कर्त्ता भी बुद्धि ही है। आत्म तो सुख-दुःख से रहित है।' मण्डन—'एक शंका और है। यजुर्वेद में कहा है—किये हुए कर्म के फल का भोक्ता और दाता बुद्धिरूपी गुफा में रहते हैं। इसका क्या अर्थ?'

शंकराचार्य—'अविद्याविशिष्ट जीव में और मायाविशिष्ट परमात्मा में आभासरूप कर्त्ता-भोक्तापन है।'।

मण्डन परास्त हो गया। सात दिन तक शास्त्रार्थ चलता रहा। उसके गले की माला सूख गई। शारदा ने आकर दोनों से कहा—'चलिये, दोनों भिक्षा ग्रहण करें।' शारदा पहले अपने पति से भोजन करने के लिये और शंकराचार्य से भिक्षा करने के लिये कहती थी, परंतु मण्डन के परास्त हो जाने के बाद संन्यास धारण करने की शर्त होने से उसने आज दोनों को ही भिक्षा ग्रहण करने के लिये कहा। मण्डन ने शारदा से कहा—'मैं

विधिपूर्वक संन्यास लेकर भिक्षा लूँगा।' और फिर उसने शंकराचार्य से कहा—'आचार्यवर, उपनिषदों के महावाक्यों का अर्थ बताइये। छान्दोग्य उपनिषद् में 'तत्त्वमसि' महावाक्य है।'

शंकराचार्य—'उद्दालक अपने पुत्र से कहता है—'तत्त्वम् असि। तत् अर्थात् वह ब्रह्म त्वमसि अर्थात् तू है। वह ब्रह्म तू है, अर्थात् तू ब्रह्म है।'

मण्डन—'त्वम् से क्या तात्पर्य?'

शंकराचार्य—'त्वम् का अर्थ तू है। परन्तु तू का अर्थ शरीर नहीं। आकार वाला और रंगवाला तू नहीं है। मनुष्य 'मेरा शरीर' कहता है। इसी से सिद्ध होता है कि मेरा कहने वाला शरीर से पृथक् है। जैसे मकान में रहने वाला मकान से पृथक् होता है, वैसे शरीर में आत्मा शरीर से पृथक् है।

मण्डन—'तो क्या मैं इन्द्रियरूप हूँ?'

शंकराचार्य—'नहीं, इन्द्रियरूप भी तू नहीं। मेरे कान में दर्द है, ऐसा कहा जाता है। 'मैं कान हूँ' ऐसा नहीं कहा जाता। कान मेरा कहने वाला कान से पृथक् है। मैं कान से सुनता हूँ, आँख से देखता हूँ, पैर से चलता हूँ। यह कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ साधनमात्र हैं। साधन कर्ता नहीं होता।

मण्डन—'तो फिर क्या मनरूप हूँ?'

शंकराचार्य—'मन भी तू नहीं है। मन आत्मा नहीं है। मैं मन से जानता हूँ। मन भी करण-कोटि में है। मैं कहता हूँ कि मेरा मन दुःखी है। मन को मेरा कहने वाला मन से पृथक् है। मन भी साधन है, कर्ता नहीं।'।

मण्डन—'तो क्या मैं अहंकार हूँ?'

शंकराचार्य—'नहीं, तू अहंकार भी नहीं है। मनुष्य कहता है, 'मेरा अहंकार बड़ा दुष्ट है।' अहंकार को मेरा कहने वाला अहंकार से पृथक् है। तू अहंकार नहीं है।'।

मण्डन—'तो क्या मैं प्राण हूँ?'

शंकराचार्य—'नहीं, तू प्राण भी नहीं है। प्राण जड है। निद्रा में पंच

प्राण अपना कार्य करते हैं, फिर भी मनुष्य बेहोश होता है और इधर चोरी हो जाती है। मनुष्य कहता है कि मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं। प्राण को मेरा कहने वाला प्राण से पृथक् है।’

मण्डन—‘तो मैं क्या हूँ?’

शंकराचार्य—‘शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार, प्राण—इन सबके अभाव का प्रकाशक तू ही तो है! तू आत्मा है और आत्मा ही परमात्मा है। तत्त्वमसि कहता है कि वह ब्रह्म तू है। तू ही ब्रह्म है। ब्रह्म ही तेरा स्वरूप है। मायिक भेद से परे होकर तुम अपने स्वरूप का अनुसन्धान करोगे तो तुम भी कहोगे ‘अहं ब्रह्मास्मि’ मैं ब्रह्म हूँ। ‘अयमात्मा ब्रह्म’ यह आत्मा ब्रह्म है। ‘एकमेवाद्वितीयम्’ ब्रह्म एक, अद्वितीय ही है। फिर भेद कहाँ है? एक ब्रह्म के सिवा और कुछ भी है नहीं और वह ब्रह्म तू है।’

शंकराचार्य का अद्वैतवाद का तत्त्वज्ञान मण्डन भली भाँति समझ गया। संन्यास के महत्त्व को भी वह समझ गया। वह बोला—‘भगवन्! घर परिवार का क्या होगा?’ शंकराचार्य ने कहा—‘मण्डन, ममता छोड़ो। घर-परिवार में आसक्तिपूर्ण ममत्व-बुद्धि ही दुःख की जड़ है। इस दुःखदायिनी जड़ को काट दो। अनासक्त तथा ममतारहित होकर विचरण से तुम्हें मालूम हो जायेगा कि वास्तव में तुम सच्चिदानंदरूप हो। अपने वास्तविक स्वरूप की दृष्टि से कोई किसी का नहीं। उनसे मोह करना अज्ञानता का परिचायक है। यहाँ तो जो कर्म सुख के लिये किया जाता है। उसी से दुःख मिलता है। शरीर की नाड़ी भी साथ छोड़ देती है, तो घर की नारी क्या साथ देगी? जैसे प्याऊ पर मनुष्य इकट्ठे होते हैं और चले जाते हैं वैसे ही परिवार के लोग हैं।’ ‘नेह नानास्ति किंचन’ ब्रह्म के सिवा कुछ भी नहीं है।

मण्डन ने कहा—‘एक शंका और है। जैमिनि ने कर्मकाण्ड और द्वैतवाद का प्रतिपादन क्यों किया?’

शंकराचार्य बोले—‘यह बात तुम जैमिनि से पूछो, उनका ध्यान करो तो वह यहाँ उपस्थित हो जायेंगे।’

जैमिनि उपस्थित हुए। मण्डन ने जैमिनि से पूछा—‘क्या शंकराचार्य

की बात सही है? भेद कल्पित है?’ जैमिनि ने कहा—‘शंकराचार्य की बात बिलकुल सत्य है। त्रिवार सत्य है। सत्ययुग में ज्ञानदाता भगवान् कपिल हुए। त्रेतायुग में भगवान् दत्तात्रेय हुए। द्वापर में भगवान् व्यास हुए और कलियुग में ज्ञानदाता भगवान् शंकराचार्य हुए हैं।’

मण्डन ने शंकराचार्य के सन्मुख नतमस्तक होकर कहा—‘आप साक्षात् सच्चिदानन्द शिवस्वरूप हैं। सौभाग्य से ही आप मेरा उद्धार करने के लिये मेरे घर पर आये। मैं तो घर-परिवार की मोह, ममता में फँसा रहा और केवल कर्मकाण्ड में ही उलझा रहा। आत्मा या ब्रह्म का कभी विचार नहीं किया। स्वर्ग सुख को ही अन्तिम साध्य समझ बैठा। कामनाओं के ताप में तपता रहा। चित्त को कभी शांति नहीं मिली। अब मैं आपका शिष्य हूँ। सब त्याग कर आप की शरण में हूँ। मुझ शरण आये हुए को आप उपदेश दीजिये।’

अष्टम धर्मोपदेश

१४-९-४९

(८)

मण्डन मिश्र अपने समय के सर्वश्रेष्ठ पण्डित थे। जब शंकराचार्य ने उन्हीं को शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया, तो औरों की बात ही क्या? मण्डन ने शंकराचार्य से कहा—‘भगवन्, मैं आपकी शरण में हूँ, आपका शिष्य हूँ। मुझे प्रतिज्ञानुसार संन्यास दीक्षा देकर कृतार्थ करें।’ शारदा ने शंकराचार्य से कहा—‘मैं इनकी (मण्डन की) पत्नी हूँ, अर्धाङ्गिनी हूँ। जब तक आप मुझे शास्त्रार्थ में पराजित नहीं करेंगे, तब तक यह (मण्डन) संन्यासी नहीं बन सकते।’

शंकराचार्य और शारदा में शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। शारदा ने समझ लिया कि शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त करना असम्भव ही है। इसलिए उसने सोचा कि बचपन में ही संन्यास धारण कर लेने से शंकराचार्य काम-कला से अनभिज्ञ ही हैं, तो काम-कला के सम्बन्ध में प्रश्न पूछकर ही शंकराचार्य को हराया जा सकता है। यह सोचकर शारदा ने शंकराचार्य से काम-कला-विषयक एक प्रश्न पूछा। शंकराचार्य शारदा की चतुराई को समझ गए और बोले—“देवि, यह संन्यासी का धर्म नहीं है! संन्यासी से काम-कला का प्रश्न नहीं पूछा जा सकता, परन्तु तुम पूछ बैठी हो, तो मैं कुछ महीनों के बाद तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूँगा।” शारदा ने आराम की साँस ली।

शंकराचार्य पद्मपादाचार्य को साथ लेकर योगबल से आकाश-मार्ग

से जंगल में चले गये और पहाड़ की कंदरा में रहने लगे। एक अमृत नामक युवा राजा की मृत्यु हुई। शंकराचार्य ने कामकला-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने के लिये उस राजा के मृतक शरीर में सूक्ष्म शरीर से प्रवेश करने का निश्चय किया। वह पद्मपादाचार्य से बोले—‘मैं सूक्ष्म शरीर से परकाया प्रवेश करना चाहता हूँ। अमृत राजा के मृतक शरीर में ही प्रवेश करूँगा। मेरा स्थूल शरीर यहीं पड़ा रहेगा। जब तक मैं फिर अपने स्थूल शरीर में आ नहीं जाऊँ, तब तक तुम सब तरह से इसकी रक्षा करना।’ पद्मपादाचार्य ने कहा—‘भगवन्, आप राजा के शरीर में प्रवेश करने जा रहे हैं, आपका पवित्र जीवन भोग और विलास का जीवन बन जायेगा। कहीं ऐसा न हो कि आप विलासमय जीवन में ही फँसे रहें और इधर आने का ख्याल ही न करें। मच्छीन्द्रनाथ जैसा योगी भी सिंहलद्वीप में जाकर योग भूल गया और भोग का दास बन गया था। आखिर गुरु गोरखनाथ अपने गुरु मच्छीन्द्रनाथ को वहाँ से लौटा लाये थे। हृदय में शंका उत्पन्न हुई, इस लिये मैंने हृदय की शंका आप के सामने उपस्थित कर दी।’ शंकराचार्य हँस कर बोले—‘भोगों में लिप्त योगी होते हैं, ज्ञानी नहीं। मच्छीन्द्रनाथ योगी थे और मैं ज्ञानी हूँ। ज्ञानी भोग के बस में नहीं होता। गोपिकाएँ कृष्ण को बस में नहीं कर सकी थी। देहाभिमानी पुरुष को भोग्य पदार्थ वियोग में दुःख देते हैं, ज्ञानी को नहीं। मेरी ओर से तुम बिलकुल निश्चिन्त रहो।’

शंकराचार्य ने राजा अमृत के शरीर में प्रवेश किया और उनका स्थूल शरीर कंदरा में पड़ा रहा। राजा अमृत के पुनर्जीवित होने से राज्यभर में खुशियाँ मनाई गईं। परन्तु राजा की बोलचाल और रहन-सहन पहले जैसा न देखकर बूढ़ा मंत्री समझ गया कि राजा के शरीर में किसी योगी ने प्रवेश किया है। योगी ने अपना स्थूल शरीर कहीं नजदीक ही सुरक्षित छिपा कर रखा होगा। योगी के उस शरीर को नष्ट कर देने से यह योगी राजा के शरीर में ही बना रहेगा और इससे प्रजा का कल्याण होगा। ऐसा सोचकर उस वृद्ध मंत्री ने शंकराचार्य के स्थूल शरीर का नाश करने के लिये चारों तरफ अपने कर्मचारी भेज दिये।

इधर शंकराचार्य ने भोग से काम-कला का ज्ञान प्राप्त किया। दिन व्यतीत होने लगे। पद्मपादाचार्य ब्राह्मण का वेष धारण कर शंकराचार्य को अपने स्थूल शरीर में वापिस आने का स्मरण दिलाने के लिए राजा अमृत के शरीरधारी शंकराचार्य के पास पहुँचे। शंकराचार्य ने पद्मपादाचार्य को पहिचान लिया और कहा—‘तुम चले जाओ। समय पूरा होते ही मैं चला आऊँगा। मैं भोग में लिप्त नहीं हो सकता।’

इधर वृद्ध मंत्री के कर्मचारियों ने शंकराचार्य के स्थूल शरीर को कन्दरा में पड़ा पाया, तो वे उसको जलाने लगे। उसी समय राजा अमृत के शरीर को छोड़कर शंकराचार्य ने अपने स्थूल शरीर में प्रवेश किया। शंकराचार्य फिर मण्डन मिश्र के घर आये। शारदा ने फिर वही काम-कला का प्रश्न किया और शंकराचार्य ने उसका ठीक उत्तर दिया। शारदा भी परास्त हो गई। यह कहा जा चुका है कि मण्डन ब्रह्मा के अवतार थे और शारदा सरस्वती की अवतार थी।

शारदा ब्रह्मलोक को जाने लगी तो शंकराचार्य ने उससे कहा—‘मैं शृंगेरी मठ में शारदा की स्थापना करूँगा।’ शंकराचार्य ने मण्डन मिश्र को संन्यास की दीक्षा दी और उनका नाम सुरेश्वराचार्य रखा। शंकराचार्य ने सुरेश्वराचार्य से कहा—‘वेदान्त का विचार संन्यासी के लिए नित्य कर्म है। वेदांत विचारणीय है, गुरु वन्दनीय है और गुरुवचन पथ्य हैं। आमरण वेदांत, गुरु और ईश्वर वन्दनीय हैं। यद्यपि ज्ञान हो जाने पर ज्ञानी को किसी कर्म की आवश्यकता नहीं रहती, तथापि कृतघ्नता का दोष परिहार करने के लिये ज्ञानी को भी कृतज्ञता-पूर्वक वेदान्त, गुरु और ईश्वर तीनों को वन्दनीय समझना चाहिये, क्योंकि इन्हीं तीनों से उसे ज्ञान प्राप्त होता है। गुरु में अद्वैत-बुद्धि रखनी चाहिये परंतु सेवा के लिये द्वैत भाव का ही आश्रय लेना चाहिये।’

सुरेश्वराचार्य को साथ लेकर शंकराचार्य अद्वैत का प्रचार करने लगे। एक समय शंकराचार्य जंगल में अकेले बैठे थे। एक भैरव का उपासक कापालिक वहाँ आया और शंकराचार्य से कहने लगा—‘मैं इसी शरीर से कैलास जाना चाहता हूँ। शंकर ने मुझ से कहा था कि ज्ञानी का सिर

अग्नि में हवन करने से तुम कैलास आ सकते हो। आप ब्रह्मनिष्ठ हैं। आप मेरी इच्छा पूर्ण करें।' शंकराचार्य ने कहा—'जब मैं समाधिस्य हो जाऊँगा, तब मेरा सिर काटकर ले जाना।' शंकराचार्य की समाधिस्थ अवस्था में कापालिक आया तो पद्मपादाचार्य पास ही बैठे हुए थे। वह सब कुछ समझ गये। उन्होंने नृसिंह का ध्यान किया। नृसिंह ने प्रकट होकर कापालिक को मार दिया।

श्रीविश्वनाथ संन्यास आश्रम (दिल्ली) के वार्षिकोत्सवों में प्रवचन संस्कृत

श्री स्वामी महेशानन्दगिरि जी महाराज

संस्कृत मातृभाषा है। माँ दो भाषा बोले तो कौन-सी मातृ-भाषा है? आजकल मातायें अंग्रेजी, हिन्दी दोनों बोल लेती हैं। अतः मातृ-भाषा अर्थात् यथार्थ ज्ञान करने वाले की भाषा। मा अर्थात् ज्ञान। 'प्रमाता' में 'प्र' उपसर्ग है। यथार्थ ज्ञान करने वाला जिस भाषा को बोले ऐसी विश्व भर में मातृभाषा केवल संस्कृत है। यथार्थ ज्ञान का एकमात्र स्रोत है वेद। प्रत्यक्ष से ज्ञान अवश्य मिथ्या होता है। प्रत्यक्ष मूलक अनुमान से भी सारे हमारे ज्ञान भ्रान्त हैं। ज्ञान दो प्रकार का—भ्रम ज्ञान और प्रमा ज्ञान। भ्रम ज्ञान वह जिसका बाध ब्रह्मज्ञान से हो। प्रमा ज्ञान है तत्त्वमस्यादि वाक्यों से उत्पन्न ब्रह्मज्ञान, इसका बाध फिर नहीं होता। ब्रह्मज्ञान के पहले जितने ज्ञान थे, सब परमात्मा का ज्ञान होते ही पता चला कि भ्रम थे। स्वकाल में सत्य की तरह लगते हैं, यह पता नहीं चल रहा कि वे सब धोखा है। किंतु प्रबोध होते ही उनकी असत्यता स्फुट हो जाती है। 'स्वकाले सत्यवद् भाति, प्रबोधे सत्यसद्भवेत्।' ब्रह्मसाक्षात्कार से पूर्व प्रमा अपने पास नहीं थी। रेल कितनी तेज चल रही है, यह देखने के लिये खम्भा या पेड़ आदि स्थिर पदार्थ को देखकर पता लगेगा। यदि दोनों चीजें गतिमान् हैं तो मेरी गति कितनी और दूसरे की गति कितनी—यह पता नहीं लगता। यदि एक नाव दस मील प्रतिघंटा की गति से चले, दूसरी नाव की गति पन्द्रह मील प्रति घण्टा की हो,

एक-दूसरे से विपरीत दिशा में चल रही हों, तो दोनों के सवार अपनी गति बीस मील प्रति घण्टा समझेंगे। यावत्-ज्ञानों की भ्रममूलता का पता स्वकाल में नहीं लगता। सत्य ज्ञान (परमात्मा के ज्ञान) के बाद पता लगता है कि सब भ्रम हैं। प्रत्यक्षमूलक सब शास्त्र मातृशास्त्र नहीं (प्रमाता के बनाये नहीं)। परमेश्वर के द्वारा निर्मित वेद मातृ-भाषा है। संस्कृत सबकी मातृ भाषा है। मूर्ख झगड़ा कर के कहता है—‘जा, आज से तू माँ नहीं, मैं बेटा नहीं।’ ऐसे ही सभी की मातृ-भाषा है तो संस्कृत ही। कुछ लोग बलात् उसका परित्याग कर कहते हैं ‘यह हमारी मातृभाषा नहीं।’ सम्यक् कृति को संस्कृति कहते हैं। वह जिसमें आये वह संस्कृत। गलत बातों का छूटना ही संस्कार है। बुरी बातों को वही छोड़ेगा जो अच्छी का आधान करेगा। वेदातिरिक्त शास्त्र स्वयं भ्रम-मूलक होने से असंस्कृत बनायेंगे। उनको पकड़ने वालों की दशा उस अन्धे की सी जिसने गाँव का रास्ता पूछा तो दुष्ट ने गधे की पूँछ पकड़ा दी! गधा दुलत्ती मारता है, चोट लगती है, पर अन्धा पूँछ नहीं छोड़ता कि ‘मैं गाँव पहुँच जाऊँगा!’ ठीक यही हाल संसार के लोगों का है। उन्हें गधे की पूँछ किसी ने पकड़ा दी। गधों को खुद नहीं पता कि कहाँ जाना है। ऐसे ही संसार से तृप्ति पाकर दूसरों को संसार की ओर जाने को कहते हों ऐसा नहीं। स्वयं दुःखी रहते हुए भी दूसरों को उसी मार्ग की प्रेरणा देते हैं। स्वयं कहते हैं ‘मेरा लड़का मेरा कहना नहीं मानता पर उसका समर्थन करना हमारा कर्तव्य है;’ बड़ा दुःख पा रहे हैं पर छोड़ नहीं रहे हैं। विचारशील सोचेगा कि प्रत्यक्ष अनुमान रूप गधे की पूँछ पकड़ी तो मिला क्या? एक नारा निकाला है कि विश्वास कर लेना चाहिये, फल भी हो जायेगा। ‘विश्वासो फलदायकः’ किंतु इसमें यह नहीं लिखा कि फल दुःख होगा कि सुख!

ब्रह्मसूत्रभाष्य में लिखा है—‘अविचारेण यत् किञ्चित् प्रतिपद्यमानः निःश्रेयसाद् हीयते अनर्थं प्रतिपद्यते।’ बिना विचार के ऊटपटाँग बात मानने वाला कल्याण के मार्ग से गिरेगा और अनर्थ को प्राप्त होगा। गधे की पूँछ जैसा यह नारा है कि ‘भिन्न-भिन्न रास्तों से हम एक ही जगह

पहुँच जायेंगे।' यह नारा संस्कृत-द्वेषियों का है। यथार्थ ज्ञान ही संस्कृत बनायेगा। हमारी मातृभाषा, (यथार्थ ज्ञान की भाषा) को संस्कृत इसलिये कहा कि हमारे दुर्गुण हटा कर संस्कारों का आधान हम में करती है। संस्कृत पुरुष का आचार संस्कृति है। जो वेदानुकूल आचरण करे वह शिष्ट है। वेद के शासन से शिष्ट पुरुष जो करें वही संस्कृति है। अपनी मातृ-भाषा को समझो। उससे संस्कृत बनो, उसका आचरण करके संस्कृत को बढ़ाओ यही संस्कृति का प्रचार है।

आजकल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में जूते पहन कर बैठते हैं। बीड़ी-सिगरेट सुलगा कर सुनते रहते हैं। ये कार्यक्रम सांस्कृतिक नहीं। 'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।' हमारा चरित्र ऐसा हो कि उसे देखकर पृथ्वी के सारे लोग सीखें। यह हो सकेगा जब इस देश के प्रसूत होंगे। हम पैदा इस देश में होते हैं, पर 'प्रसूत' नहीं होते। 'प्रकर्षेण सूतस्य', जब अच्छी प्रकार से पैदा होंगे, शास्त्रानुकूल विधि से सोलह या अड़तालीस संस्कारों से युक्त होंगे तभी यह संभव है। 'अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः' से कवियों ने बताया है कि पहले मातृ-भाषा का स्वयं अध्ययन करें। पहले सीखना पड़ता है। संस्कृत सीखने में लोग झंझट मानते हैं। संस्कृत की स्थापना करना चाहते हो तो संस्कृत सीखनी पड़ेगी। निर्विकल्प समाधि संस्कृत सीखने से सरल नहीं है। संस्कृत सीखने में झंझट मानने वाले परमेश्वर को जान पायें यह दुर्लभ है। 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' जिसने वेदाध्ययन नहीं किया वह बृहत् ब्रह्म का मनन नहीं कर पाता। वेदादिशास्त्रों का अध्ययन किये बगैर कभी ब्रह्मविचार में रस आने वाला नहीं। मनुष्य का वेदान्त में चंचुप्रवेश होने से गंभीर लाभ नहीं। वेदान्त की कुछ प्रक्रियाओं को ग्रन्थों से जानने मात्र से आनन्दका उल्लास नहीं आता, कपूर की तरह आनन्द उड़ जाता है।

अध्ययन करो, समझो—तब हृदय में बोध उत्पन्न होगा। जब पता लगता है तब आनन्द मनुष्य के कण-कण, क्षण-क्षण को भर देता है। हर क्षण आनन्द की अनुभूति रहती है। आनन्द का रस कण-कण,

क्षण-क्षण में भर जाता है। मक्खन का कलेवा करके क्या छाछ पियोगे! क्या अखण्ड आनन्दको प्राप्त करके विषय सुखों की तरफ प्रवृत्ति होगी?

बोध के बाद आचरण प्रयत्नपूर्वक नहीं करना पड़ेगा स्वभाव से ही प्रवृत्ति वैसी बनेगी। अच्छा संगीतज्ञ चलता है तो भी ताल लगती है। बोलने में भी स्वर का भान रहेगा। पहलवान दोस्त से गले मिलता है तो भी हाथों की पकड़ विशिष्ट होती है। गले मिलने से पता लगेगा कि यह पहलवान है। जब आत्म-ज्ञान हो जाये तब चलना, उठना, बैठना, खाना सभी करते हुए उसकी निर्निमेष दृष्टि अखण्ड आनन्दमें रहती है। अतः आचरण में अखण्ड आनन्द टपकता रहता है। दुःखी से दुःखी व्यक्ति वहाँ जाता है तो दुःख से अभिभूत नहीं रहता, ब्रह्मनिष्ठ के सामने उपस्थित होने से ही संशय दूर होते हैं। जो दूसरों के अज्ञान को अभिभूत करे, जिसके पास जाने से संशय न रहे, उसमें क्या दुःख संशय रहेंगे! समुद्र की हवा से ही शरीर चिपचिपा होता है तो उस समुद्र में नमक कितना होगा?

शिष्ट पुरुष का आचरण स्वभावपूर्वक शिष्ट है, विचारपूर्वक नहीं। वह सारे दुःखों से अतीत रहकर सुख में मग्न रहता है। 'नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः' शास्त्र का कहना है कि जो सही तरह पूछे नहीं उसे मत समझाओ। बहुत से लोग घेर लेते हैं, कहते हैं 'हमारी बात सुनो।' हम भी दूसरों की देखा-देखी ऊसर में बीज डालकर उन्हें नष्ट कर रहे हैं। यदि अच्छे अन्तःकरण में डालते तो फलवाली खेती होती।

परब्रह्म परमात्मा के बोध के कारण ही बड़े से बड़े दुःख में हम स्थिर रहें, ऐसे सुख की प्राप्ति जिससे सम्भव है वह संस्कृत ही मातृभाषा है। बाकी भाषाओं से होने वाला ज्ञान भ्रमरूप है। संस्कृत से ही शिष्ट बन सकते हैं, तभी हमारा आचरण संस्कृति-संपन्न होगा आचरण में आकर्षण रहेगा। उससे अनुकरण यही 'प्रचार' है।

कर्म

श्रीस्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज

यजुर्वेद में लिखा है—‘कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः’ यदि सौ वर्ष जीना चाहे तो भी कर्म कभी छोड़ो नहीं। जीव कर्म करते हुए ही जीवन की इच्छा करे तभी ‘न कर्म लिप्यते नरे’ वह कर्मलेप से रहित हो जायेगा।

कहोगे ‘कर्म तो हम करते ही रहते हैं। इसमें उपदेश की क्या ज़रूरत है?’ कोई दुकान करता है, कोई नौकरी आदि। ये कर्म स्वाभाविक हैं। दूसरे हैं शास्त्रीय कर्म। स्वाभाविक कर्म स्वतः प्राप्त है। वैदिककर्म करना चाहिये। वैदिक कार्य करता रहेगा तो पाप से लिप्त नहीं होगा। स्वाभाविक कर्म है सोना। दिन के सात-आठ बजे तक सोता रहे, यह स्वाभाविक कर्म है। ऐसा करने से पाप का लेप हो जायेगा। ‘ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद् रघुनन्दनम्’। ब्राह्म मुहूर्त में अर्थात् प्रातः करीब चार बजे उठकर परमात्मा का चिन्तन करना यह शास्त्रीय कर्म है। स्वाभाविक कर्म है आठ बजे तक सोना। स्वाभाविक कर्म करने से पाप कर्म का लेप होगा, ‘ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी’ सूर्योदय से पूर्व दो घड़ी में सोने से पिछला करा हुआ पुण्य भी नष्ट हो जाता है, करी हुई कमाई भी चली गई। उस समय परमेश्वर का चिन्तन करे। निद्रा समय में मन अनेकाग्र नहीं रहता है। जाग्रत्, स्वप्न में मन अनेकरूप से बन जाता है। सोकर उठने पर मन स्वभाव से शान्त होता है अतः भगवान् में सरलता से एकाग्र हो जायेगा। जैसे सूर्य की किरण

संसार में फैलती है ऐसे मन भी सूर्योदय के बाद संसार में फैल जायेगा, बिखर जायेगा। इसके अभ्यास के लिये चार बजे उठने का निश्चय करके यदि किसी दिन नहीं उठा जाये तो उस दिन भोजन न करो। दूसरे दिन चार बजे अपने आप नेत्र खुलेंगे! मन काबू में तभी आता है जब इसे भी दण्ड दो। पहला काम चार बजे उठना।

फिर परमेश्वर-चिन्तन करो। चार बजे मन सत्त्वगुणी होता है। इससे परमेश्वर की आराधना ठीक होती है। रजोगुणी होने पर माला हाथ में, मनीराम चारों तरफ घूमता है। आलस्य व निद्रा की निवृत्ति के लिये स्नान करके बड़ी सावधानी से बैठो तब भजन करो। कैसी सावधानी? सामने सर्प बैठा रहे उस समय निद्रा आवेगी? भजन के समय भी इस प्रकार की सावधानी चाहिये है। शरीर क्षणभंगुर है, अगले क्षण का पता नहीं। मनीषानन्द पुष्करराज में बात करके बगीचे में गये, लम्बे पड़ गये, एक क्षण में काम समाप्त! इस शरीर से आगे जहाँ जाना है उसका पता करना चाहिये। इसी मानव शरीर में उसका पता चलता है। भविष्य में कहाँ जाना है? 'माम् उपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते' मेरी प्राप्ति से जन्ममरण का चक्र मिटता है। जीवन का ध्येय लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। देवादि शरीर भी भोगों में लगे रहते हैं।

भगवत्-चिन्तन ही उसकी प्राप्ति का साधन है। ऐसे चिन्तन करने से आपको एक दिन भगवत्-प्राप्ति होगी। संसार का चिन्तन करेगा तो संसार की प्राप्ति होगी। एक घड़ी भगवत्-चिन्तन अवश्य करो। बिना स्नान और भजन के न खाये। 'अस्नात्वाशी मलं भुङ्क्ते अजपी पूयशोणितम्' प्रातः स्नान जप किये बिना भोजन करना महान् दोष है। रोज का नियम रखना चाहिए कि चार बजे स्नान करके भजन करे। आजकल चाय का रगड़ा बहुत है। चाय पीना ही नहीं चाहिये। यह नशे की चीज़ है। पीना भी है तो भजन करके पीवे। बाबू लोग बिस्तर में चाय लेते हैं, वह न करे।

जीवन का लक्ष्य

श्रीस्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज

मानव जीवन का लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। अन्य जीवनों का लक्ष्य भोगप्राप्ति है। एक कम चौरासी लाख योनियों में भी भोग होता ही है पर उनमें भक्ति नहीं हो सकती। भक्ति का साधन केवल मानव शरीर है। इस वास्ते सृष्टि के आदिकाल में बहुत से शरीर बनाये पर भगवान् ने उनमें देखा कि तत्त्व को जानने की योग्यता किसी में नहीं थी। तब बाद में मानव शरीर बनाया। भगवान् ने मानव शरीर में इस योग्यता को ही विशेष देखा। बाकी शरीर भोग के साधन हैं। मानव शरीर भगवत्प्राप्ति का साधन है। जो इसमें भोगपरायण हो गया, उसका जीवन व्यर्थ चला गया।

भगवत् नाम का स्मरण भगवत्-प्राप्ति का सीधा उपाय है। शास्त्र में कहा—

सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञान-विरागयुक्तम् ।

अपि स्मृतिः कृष्णपदाम्बुजस्य क्षिणोत्पभद्राणि शुभं तनोति ॥

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात् ।

विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

भगवान् का नाम स्मरण सरल साधन है। चलते, उठते, खाते, पीते, सभी समय कर सकते हैं। संध्यावन्दन, गायत्री जप में पूर्वाभिमुख होना आदि नियम है। नाम-स्मरण में कोई नियम नहीं है। स्मृति मन में शम अर्थात् शान्ति लाती है। परमात्म-स्मरण ही अन्तःकरण की शुद्धि करने वाला है।

‘भक्त्या माम् अभिजानाति’ ज्ञान का साधन, भगवान् का दर्शन कराने वाली नामस्मरणरूपा भक्ति है। भगवत्नामस्मरण से अन्तःकरण शुद्ध होवे तो फिर भगवान् का ज्ञान सरल है। ‘ज्ञानादेव तु कैवल्यम्’ ज्ञान होवे तब मोक्ष की प्राप्ति निश्चित है। कल्याण का पहला साधन ‘कलियुग केवल नाम आधारा’ नाम स्मरण है। चलते-फिरते, उठते-बैठते मन में भगवान् का नाम लेते रहो। हमेशा नाम स्मरण करना चाहिये। कौन-सा नाम? जो अच्छा लगे। उलट-पुलट हो जाये तो भी सर्वज्ञ भगवान् भावग्राही हैं, भाव देखते हैं। बाजार में भी नमक, सब्जी आदि भाव से मिलती हैं। भगवान् के मिलने का भी भाव है। ‘भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्’। तुम्हारा शरीर किसी हद तक काबू में है, जीभ भी अपने वश में है ही।

हे जिह्वे रससारज्ञे मधुरं किन्न भाषसे?

मधुरं वद कल्याणि लोको हि मधुरप्रियः ॥

हे जिह्वे! तू जैसे मीठा की पहचान करती है वैसे भगवान् के मधुर नाम क्यों नहीं लेती? मधुर को चखने के लिये तैयार रहती है तो मधुर भी बोल। दाँतों ने जीभ से कहा ‘देवि तू मीठा बोला कर, तू यदि कड़वा बोलेगी तो मुक्का हमें खाना पड़ेगा! दूर गिर जायेंगे।’ भगवान् का नाम कैसा ही हो, उच्चारण भाव समेत होना चाहिये।

एक बार एक किसान कथा सुनने गया। पंडित कथा बाँच रहे थे, वहाँ बैठा। ‘गरुडध्वज’ नाम भगवान् का है। क्यों कि गरुड का चिह्न भगवान् के रथ की ध्वजा में है। पंडित ने कहा ‘भगवान् का नाम गरुडध्वज है। इससे वे प्रसन्न होते हैं!’ किसान ने ‘गरुडध्वज’ नाम याद किया। निद्रा आ गई, अगले दिन उठा तो ‘सरडपच्च’ याद रहा! हल जोते, बैल हाँके हमेशा ‘सरडपच्च’ करता जाये। विष्णु को वैकुण्ठ में हँसी आ गई। लक्ष्मी ने पूछा ‘क्यों हँसे, बताओ।’ भगवान् को बताना पड़ा ‘आज नया नाम निकालने वाला भक्त मिला। न किसी वेद में, न पुराण में ‘सरडपच्च’ मेरा नाम है।’ लक्ष्मी ने कहा ‘आप कैसे दावा करते हो कि आपका ही नाम है!’ कहा ‘तुम पूछ लो जाकर।’

जहाँ जंगल में कुम्हार मिट्टी खोदते हैं वहाँ गड्ढे में भगवान् बैठ गये। लक्ष्मी जी किसान के पास गयी, पूछा 'तू किसका नाम लेता है? सरडपच्च, सरडपच्च क्यों करता है?' वह बोला नहीं कि भूल जायेगा। लक्ष्मी ने फिर पूछा तो गुस्से में बोला 'तेरे खसम का'। लक्ष्मी ने समझा कि मुझे पहचान गया। लक्ष्मी ने फिर पूछा 'मेरा खसम कहाँ है।' किसान बोला 'कहीं गड्ढे में पड़ा होगा।' लक्ष्मी लौटी तो भगवान् ने पूछा 'किसका नाम लेता है।' वह बोली 'आपका ही नाम लेता है।' कौन-सा? कहा 'वह लेने लायक नहीं!' भगवान् ने चलकर उसे दर्शन दिये। ऐसे ही वाल्मीकि ने 'मरा मरा' ही कहा तो भी भगवान् प्रसन्न हो गये।

इसी प्रकार पूरे प्रेम से लगातार भगवान् का नाम लेता रहे तो जीव का कल्याण सुनिश्चित है।

भक्ति

श्रीस्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज

आज भक्ति के ऊपर कई प्रकार के विचार हुए। विश्व में किसी भी चीज़ को प्राप्त करने के दो तरीके एक क्रम से, दूसरा, अक्रम से। धनी बनने के दो तरीके, धीरे-धीरे दुकान में काम बढ़ाते जाओ या बड़े लखपति-करोड़पति के कृपा-पात्र बनो और वह सम्पत्ति दे दे। क्रम से स्वप्रयास साधन है, अक्रम में अहैतुक कृपा साधन है। परमात्मा की तरफ जाने वाले साधक भी दो प्रकार के हैं—(१) स्वप्रयास पर निर्भर करने वाले (कर्मी), (२) परमात्मा पर निर्भर करने वाले (भक्त)। ‘उपासना नाम मानसी क्रिया’ ऐसा ब्रह्मसूत्र-भाष्य में कहा है। इसीलिये वस्तुतः भक्ति भी कर्म है। कर्म से अथवा भक्ति से जीव परमात्म-प्राप्ति की योग्यता प्राप्त करता है। कर्म में भूलें होती रहती हैं, उनका विचार करें तो हताशा हो जाती है। जितना भी प्रयत्न करो, परमात्मलाभ होता नहीं। अतः आचार्य शंकर कहते हैं—

अयःस्पर्शं लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं,
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम् ।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि,
त्वयि प्रेम्णा सक्तं कथमिव न जायेत विमलम् ॥

(आनन्दलहरी श्लोक १२)

अंतःकरण ‘अयः’ अर्थात् लोहे की तरह काला है, तमोगुण से घिरा है। अन्यत्र आचार्य इसका हाल कहते हैं—

५० ► आचार्य शंकर का जीवन

सदा मोहाटव्यां चरति युवतीनां कुचगिरौ
नटत्याशाशाखास्वटति झटिति स्वैरमभितः ।
कपालिन् भिक्षो मे हृदयकपिमत्यन्तचपलं
दृढं भक्त्या बद्ध्वा शिव भवदधीनं कुरु विभो ॥

(शिवानन्दलहरी)

प्रयत्न करने पर भी हृदय लोहे की तरह काला रहता है। स्पर्शमणि (पारस) से छुआओ तो लोहा मुलायम और सुनहरा दोनों हो जायेगा। जो काला भी था, नरम भी नहीं था वही पारस के स्पर्श से सुनहरा हो गया, कठोर भी नहीं रहा। इसमें देर नहीं लगती, 'सपदि' तत्काल ऐसा हो जाता है। स्पर्शमणि छूने से लोहे में परिवर्तन होता है। कोई जरूरी नहीं कि पारसमणि को लोहे से छुआओ, लोहा भी पारसमणि पर लगे तो सोना ही बनेगा।

सोना चीज़ तो अच्छी है पर वह पवित्र नहीं है इसलिये दृष्टान्त बदला। नाली का पानी गंगा में पड़े तो पवित्र हो जाता है। आचार्य ने गंगा के जल में भी न्यूनता आयेगी यह दिव्य दृष्टि से देखा होगा। अतः कहा 'गंगौघ', गंगा के पूर्ण प्रवाह में नाला पड़े तो पवित्र हो जायेगा। यहाँ नाले ने क्या किया? प्रवाह के अन्दर पड़ जाने मात्र से शुचि हुआ।

इसी तरह जिन पापों का प्रक्षालन आवश्यक है वे सभी कैसे दूर होते हैं? उसके लिये प्रयत्न कैसे करें? साधना अन्तःकरण-मूलक है। अन्तःकरण मलिन है तो साधना भी करोगे कैसे? 'त्वयि प्रेम्णा सक्तं'—यदि वह परमेश्वर में प्रेम से आसक्त हो गया तो विमल हो ही जायेगा। प्रेम की उत्पत्ति में कारण नहीं होता। प्रेम चीज़ क्या है?

पूर्णता के प्रति मानव की कामनाओं के प्रवाह का रूप ही प्रेम है। प्रत्येक मानव के हृदय में आदर्शों का कोई रूप है—शरीर ऐसा होना चाहिये, व्यवहार ऐसा, घर ऐसा होना चाहिये आदि। प्रत्येक व्यक्ति अपने आदर्श बिम्ब को 'इष्ट' मानता है।

जो हम बनना चाहते हैं, वही हमारा इष्ट है। यदि जीवन में इष्ट स्थितियाँ पाते चलें तो पूर्णता का अनुभव होता है अन्यथा अपूर्णता का

अनुभव रहता है। पुण्य कर्मों के बाहुल्य से काम और संकल्प पूर्ण होते चलते हैं। ऐसा हो तो समझो कि अन्तःकरण शुद्ध है। कामना उत्पन्न हो पर पूर्ण न हो तो समझो कि पाप का उदय है। पूर्ण शुद्ध का अन्तःकरण सत्यकाम, सत्यसंकल्प होता है।

जिसमें पूर्णता की कल्पना की जाये वह इष्ट, इच्छा का विषय होता है। जितना उसे अन्तःकरण में बैठायेगा उतना उसके गुणों का आविर्भाव हम में होगा। समग्र गुणों का आधार परमेश्वर है, उसमें सब कुछ पूर्ण है। पर जो पूर्णता हम चाहते हैं, उसके अंग से हमें प्रेम होता है। 'चिता भस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो' यह महात्मा का ध्यान होगा। गृहस्थ को अच्छा लगेगा 'कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं'। आदर्श बिम्ब के प्रति प्रेम स्वभाव से होता है। हम उसे पहचानते नहीं तो उसका विरह बना रहता है। घटज्ञान में 'ज्ञान' तो है ही भले ही घट से विशिष्ट हो। विशेषणों के कारण हम उसे समझते नहीं। संसार की आसक्ति का विषय भी नाम-रूप से आक्रान्त अर्थात् विशिष्ट परमेश्वर ही है पर जीव यह तथ्य पहचानता नहीं अतः मानता है कि अपने प्रेम का पात्र अभी नहीं मिला। बचपन में खिलौनों से प्रेम करते हैं पर वे टूट जाते हैं। दोस्त छोड़ जाते हैं, शादी के कुछ काल बाद पत्नी भी कहती है 'अब बच्चे हो गये, मुझे फुरसत नहीं!' बच्चों से प्रेम किया, वे भी कहते हैं, 'हम बड़े हो गये हमें फुरसत नहीं।' संसार में कोई प्रेम का ग्राहक नहीं है। एक परमेश्वर ही प्रेम ग्रहण करता है। बाकी सब चीजों का मालिक वह पहले से ही है, सिर्फ दिल फेंकने की स्वतन्त्रता तुम्हें दे रखी है वही एक दिल का ग्राहक है। उसे स्वतन्त्रता पूर्वक परमात्मा को दो।

**न मोक्षस्याकांक्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्रणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥**

मोक्ष की आकांक्षा उसे होगी जिसे बन्धन का अनुभव हो। न्यूटन ने बर्तन के ऊपर छन्नी ऊपर-नीचे होते देखी तो भाप के धक्के से यन्त्र

बनाना सीख गया। भाप भरी है तो धक्का मारेगी ही। जीव में भी प्रेम अन्दर भरा है। थोड़ा-सा धक्का मारकर परिछिन्न निकलता है पर उससे जी भरता नहीं, फिर-फिर संसार के पदार्थों में आसक्ति होती है। उस हल्ले से बचने को ही तो मोक्ष कहते हैं! नाम-रूप उपाधि से सहित या उससे रहित, दोनों ब्रह्म ही है। पत्नी कभी घूँघट करती है, कभी उघाड़ देती है। बिना पर्दे का अनुभव, पर्दे वाले अनुभव से अधिक आनन्दप्रद होता है। नाम-रूप-कर्म की उपाधि का घूँघट रहते भी आनन्द तो है ही। पर उसके बिना परमेश्वरदर्शन का आनन्द असीम है।

प्रेम परमेश्वर पर स्थिर रह सकता है। क्योंकि एक तो वे उसके स्थायी ग्राहक हैं, दूसरा वे स्वयं स्थिर हैं। भगवान् 'भव' हैं, सद्रूप हैं, संसार के कण-कण में है-रूप से उपस्थित हैं। उन्हीं में नाम-रूप-कर्म के वैविध्य के आरोप से विभव की प्रतीति है। जो भव से प्रेम कर लेता है वह उसके विभव की वांछा से मुक्त हो जाता है। असली तत्त्व भव ही है, विभव तो उसका ओढा हुआ मिथ्या घूँघट है। सांसारिक विषय स्वयं भी एवं उनकी अनुकूलता भी वैसे ही घटती-बढ़ती है जैसे चन्द्रमा की कलाएँ। शशी या चाँद जैसे परिवर्तनशील मुख अर्थात् परिचय वाले पदार्थों के सुख की इच्छा उसे संभव नहीं जिसने एकरस सच्चिदनन्त आनन्द को ही अपना इष्ट निर्धारित कर लिया। सुख को अपने से भिन्न जानते ही उसे चाहा जा सकता है, जिसे सुख की अनन्तता का बोध है वह उसे स्वयम् से अभिन्न समझते हुए सुखेच्छुक नहीं रहता, वह प्राप्त वस्तु है इस निश्चय वाला बन जाता है। इच्छा तो अप्राप्त विषयों की ही हुआ करती है।

भगवत्प्रेमी उनसे 'संयाचे' सम्यक् याचना करता है! उसे भगवान् से माँगने में डर नहीं रहता। अज्ञानी तो लोहा, सोना, अन्न आदि स्वल्प विषय ही माँग पाते हैं पर ऐसे तुच्छ पदार्थ उनसे माँगने में वास्तव में उनकी इज्जत घटती है, परमेश्वर की गरिमा के अनुरूप ही उनसे माँगना चाहिये। तत्त्वबोध से अज्ञान मिटने पर दुःख असंभव हो चुकने से परमेश्वरप्रेमी माँगता है 'जननं यातु'! 'मेरे जन्म बीतते रहें।' यहाँ

‘जननम्’ केवल एक जन्म के लिये नहीं वरन् जात्यर्थक एकवचन होने से अनन्त जन्मों के लिये कहा है। अज्ञान दुःख देता है, वह मिट चुकने पर जन्म दुःख नहीं देता। कृष्ण द्वैपायन आदि आधिकारिकों के अनेक जन्मों के बावजूद उन्हें कोई बंधन नहीं वरन् परमेश्वरप्रेम से प्रेरित हो वे निरन्तर आनन्द में रहते हैं। अतः केवल ‘जननं यातु’ नहीं वरन् ‘जपतः,’ भगवन्नाम जपते हुए जीवन बीतने की संयाचना है। जप में अर्थभावना निहित रहती है।

भगवती का नाम लिया ‘मृडानी’ वे सुखस्वरूप हैं। ‘रुदाणी’ रुत् अर्थात् ज्ञान उनमें नित्य भासता है। भक्त को निरन्तर तत्त्वज्ञान अतः सुख का आविर्भाव बना रहता है। आचार्य शंकर कहते हैं ‘इदंबुद्धिकालेऽपि सर्वं ब्रह्मैव,’ उसका ब्रह्मभाव इदम्बुद्धि (संसार-प्रतीति) से प्रतिहत नहीं होता। ‘शिव-शिव’ दो बार कहा क्योंकि समाधि में निरुपाधिक और व्यवहार में सोपाधिक दोनों रूपों का दर्शन उसे बना रहता है। ‘भवानी’ अर्थात् सद्रूप भगवती पर दृष्टि केन्द्रित रहने से यह जप करते हुए अनन्त जन्म भी क्यों न बीतें, भक्त कृतार्थ ही रहता है। प्रेमाकार वृत्ति से परमात्मा को विषय करना ही भक्ति का रूप है जिसमें वही पूर्णता का बिम्बरूप इष्ट स्वीकार रहता है।

उपनिषदों में प्रतिपादित मानव जीवन

श्रीस्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज

ऋग्वेद में प्रतर्दन राजा की कथा आयी है। इन्द्र का असुरों से युद्ध हुआ। उसमें प्रतर्दन राजा ने इन्द्र की मदद की। देवताओं की मदद के लिये हमारे राजा जाते थे। आज जैसे चीन के आक्रमण करने पर हम दूसरों से मदद माँगते हैं, वैसे देवता हम से मदद माँगते थे। राजा प्रतर्दन की मदद से इन्द्र जीत गया। भारत के राजा से इन्द्र ने वर माँगने को कहा। प्रतर्दन संसार का चक्रवर्ती राजा था, माँगता क्या! भोजन, हिरण्य क्या माँगता! उसने सोचा कि कहीं वर माँगने में चूक न जाये अतः उसने कहा, 'मुझे कल्याण की बात बताओ'। इन्द्र ने कहातू एक वर के पेट में दो माँग रहा है। पर वचनबद्ध एवं प्रसन्न होने से इन्द्र ने रहस्य बताया कि मनुष्य के लिए हिततम यही है 'मां विजानीहि'। जीवन का उद्देश्य इन्द्र ने यही बताया। श्रुति इसे हिततम समझ रही है। ब्रह्मसूत्रों के प्रतर्दनाधिकरण में 'माम्' का अर्थ बताया चिदात्मा अर्थात् परमेश्वर, जो सब प्राणियों में मौजूद है। अस्मत् तत्त्व को जानो यही मानव जीवन की पूर्णता है।

यजुर्वेद में एक प्रसंग आया है। याज्ञवल्क्य महर्षि की दो पत्नियाँ थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। याज्ञवल्क्य वृद्ध हो गये, संन्यास लेने को तैयार हुए। विचारा कि सम्पत्ति का बँटवारा करें। कात्यायनी आज्ञाकारिणी थी। जैसे ही कहा, वैसे ही बोली 'जी, जो आज्ञा।' मैत्रेयी ने कहा 'मैं ऐसे नहीं मानती! सारी सम्पत्ति बाँटोगे?' महर्षि ने कहा 'हाँ।' 'आप वन

में क्यों जाना चाहते हो? जो आत्मानन्द आपके पास है उसे भी बाँटो। क्या धन से मुझे वह आत्मानन्द मिल जायेगा, जिसे तुम पाने जा रहे हो!’ याज्ञवल्क्य ने कहा ‘अमृतत्व तो धन से नहीं मिलता।’ मैत्रेयी बोली ‘मैं वही वित्त चाहती हूँ जिसके लिये तुम वन में जा रहे हो।’ आज्ञाकारिता का अर्थ केवल ‘जी हाँ’ करना नहीं, हृदय से पहचानना जरूरी है। पार्वती तो शंकर का आधा शरीर बनी थी। याज्ञवल्क्य बोले ‘तू तो मेरे सारे शरीर में व्याप्त होना चाहती है। वह धन मिलने पर तेरा मुझसे कोई भेद नहीं रह जायेगा।’ उन्होंने समझाया ‘आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।’ आत्मा ही एकमात्र दर्शन के योग्य है। ‘आरामम् अस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन’। बगीचे को आराम कहते हैं; आ=समन्तात्, राम=जहाँ लोग रमें, प्रसन्न हों। परमेश्वर की बनायी जेल नहीं है संसार, श्रुति ने इसे ‘आराम’ बगीचा कहा है। किंतु केवल बगीचे में फँस न जाना, उसके मालिक से पहचान करो, यह मानव जीवन का उद्देश्य है।

सामवेद में बताया गया है कि श्वेतकेतु बारह बरस का हुआ तब तक कुछ नहीं पढ़ा। उसके पिता उद्दालक आरुणि कहने लगे ‘हमारे कुल में ब्राह्मण-बन्धु कोई नहीं पैदा हुआ। तुझे विद्या अवश्य ग्रहण करनी चाहिये।’ श्वेतकेतु गुरुगृह गया, पढ़कर विद्वान् होकर घर आया। ब्राह्मणों में विद्या का गौरव है, क्षत्रियों में बल का, वैश्यों में धन का गौरव होता है। शूद्रों में केवल उम्र से बड़प्पन होता है। श्वेतकेतु पिता से अपने को विद्या में बड़ा मानने लगा जिससे उसमें अविनय आ गयी। यदि विद्या ही विनय को दूर करे तो मानो माँ बच्चे को अफीमची बना रही है; विनय नहीं तो समझो कि विद्या नहीं पढ़ी गयी। पिता ने उसे सावधान करने के लिये पूछा ‘तुमने उसको भी जान लिया जिसके जानने से सब कुछ जान लिया जाता है?’

श्वेतकेतु उस तत्त्व से तो सर्वथा अनभिज्ञ था। पुनः गुरुगृह लौटना नहीं चाहता था। उसने पिता की ही शरण ली, उन्हीं से उस विद्या की प्रार्थना की।

उद्दालक आरुणि ने उसे अत्यन्त विस्तार से समझाया कि सद् ब्रह्म को जानने से ही सब कुछ जान लिया जाता है। सामवेद ने ऐसी सर्वज्ञता को मानव जीवन में प्राप्तव्य बताया है।

अथर्ववेद में कहा है कि शौनक महर्षि महाशाल थे। उन्होंने अंगिरस ऋषि से प्रश्न पूछा। उन्होंने उत्तर में बताया कि परा-अपरा दो विद्यायें हैं। 'परा यया तद् अक्षरम् अधिगम्यते' अथर्ववेद की मुण्डकोपनिषद् में परा विद्या की प्राप्ति मानव जीवन की वास्तविक उपलब्धि कही। इस प्रकार सारी उपनिषदें एकमत हैं कि परमात्म का ज्ञान हुए बिना मानव जीवन सफल नहीं होता।

उसकी प्राप्ति किस प्रकार से हो इसके तरीके अनेक हैं। प्रतर्दन ने विनय से इन्द्र से पूछा। गुरु का, इन्द्र का उपकार किया था। उपकार या सेवा से गुरु को प्रसन्न कर उनसे विद्या मिल सकती है। पति-पत्नी के अभिन्न सम्बन्ध वाली मैत्रेयी थी, उसमें प्रेम अधिक था। प्रेम या भक्ति से प्रसन्न हुए गुरु भी उपदेश प्रदान करते हैं। श्वेतकेतु में अपने में आने वाले दोष की निवृत्ति की इच्छा थी। अपने दोष हटाने के प्रति हृदय से उत्सुकता हो तो यह देखकर गुरु ज्ञान प्रदान करते हैं। शौनक स्वयं शास्त्र आदि समझे हुए थे फिर भी उस ज्ञान से जीवन को पूर्ण नहीं पा रहे थे अतः वास्तविक जिज्ञासामात्र से प्रेरित हो निरहंकारभाव से उन्होंने प्रश्न किया। तत्त्व के प्रति असीम श्रद्धा देखकर भी गुरु उपदेश प्रदान करते हैं। इस प्रकार अनेक तरीके हैं जिनसे शिष्य आचार्य से यह तत्त्व ग्रहण कर सकता है किंतु उपनिषदें इस विषय में एक ही स्वर से कहती हैं कि आत्मज्ञान ही मानव जीवन का वास्तविक लाभ है।

उपनिषदनुसार मानवजीवन का उद्देश्य

श्रीस्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज

आज का विषय है 'मानव जीवन का उद्देश्य' इस जीवन का उद्देश्य वह है जो और जीवनों में प्राप्त नहीं हो सकता। चौरासी लाख प्रकार के जीवनों में मनुष्य एक जीवन है। गाय, भैंस आदि बाकी जीवन प्रसिद्ध हैं। इनमें मानव जीवन ही ऐसा है जिसमें वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है, और जीवनों में नहीं। पहाड़, जंगल आदि में दूर से अग्नि का ज्ञान धूम से होता है। धूम को देखने से वह्नि का ज्ञान होता है। धुआँ देखकर पहाड़ पर आग का पता चले तो कहते हैं 'यह पहाड़ अग्नि वाला है, धूम वाला होने से' यहाँ पहाड़ 'उद्देश्य' है। अग्नि का वहाँ विधान है। ऐसे यहाँ पहाड़ और जंगल आदि की जगह पर मानव शरीर के उद्देश्य से विधान है अन्तरात्मा परब्रह्म के ज्ञान का। जैसे जंगल आदि में अग्नि का ज्ञान होता है धूम के द्वारा, ऐसे उद्देश्य मानव जीवन में परमेश्वर है। धूम की जगह पर निष्काम कर्म और निष्काम भक्ति है। इन दोनों के अनुष्ठान से परमात्मा का ज्ञान होता है।

और जीवनों में ज्ञान कराने वाला साधन उपलब्ध नहीं। मनुष्येतर जीवनों में परब्रह्म का ज्ञान कराने वाले साधन नहीं हैं। पशु-पक्षी वैदिक धर्म का अनुष्ठान नहीं कर सकते। महासमुद्र में न धुआँ उठेगा, न अग्नि का ज्ञान होगा। समुद्र की तरह मनुष्येतर योनियाँ हैं। उनमें परब्रह्म का ज्ञान नहीं क्योंकि निष्काम कर्म और निष्काम भक्ति का अनुष्ठान उनमें नहीं हो सकता। भागवत के ११वें स्कन्ध में कृष्ण ने उद्धव से कहा कि

‘जितने शरीर मैंने पहले बनाये, उनमें मेरे स्वरूप को जानने की योग्यता किसी में नहीं थी। बाद में मानव शरीर बनाया। मानव शरीर में मेरे स्वरूप को जानने की योग्यता है।’ यह कृष्ण ने उद्धव से कहा। अतः मानव जीवन का उद्देश्य परब्रह्म का दर्शन। और जीवनों में यह कभी होने का नहीं। मानव शरीर भी बहुत हैं। क्या सभी शरीरों में ज्ञान होगा? निष्काम कर्म और निष्काम भक्ति ही मानव शरीर में ज्ञान करायेंगे। जो मनुष्य इन दोनों को करेगा उसी का अंतःकरण शुद्ध होगा।

‘इह चेद् अवेदीद् अथ सत्यम् अस्ति’ से बतलाया कि ‘इह’ मानव शरीर में परब्रह्म को जान लेता है तो मानव जन्म लेना सफल हो जाता है। मानव जन्म की सफलता तभी होगी जब और लोगों के पास जो नहीं होता वह मानव के पास हो। धन तो भूत, सर्प के पास भी होता है। पुत्र-पोते तो सर्प के १०८ होते हैं ‘न कर्मणा, न प्रजया’ साधनान्तर से नहीं। केवल परब्रह्म के ज्ञान से मनुष्यता सार्थक है। ‘अथ सत्यमस्ति’ मानव जन्म की सफलता परब्रह्म के ज्ञान से ही है। परब्रह्म का ज्ञान मानवशरीर में आकर नहीं किया तो ‘महती विनष्टिः’ महान् हानि है। उस हानि की कभी पूर्ति होती नहीं। इस मानव जन्म में अपने कल्याण को पा लेना चाहिये ताकि हानि न हो। यह कैसे हो? वेद ने ही कहा ‘भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः’। चार प्रकार के भूत, अर्थात् प्राणी प्रसिद्ध हैं—उद्भिज, अण्डज, स्वेदज, जरायुज। सारे शरीरों में वही अन्तरात्मा विद्यमान है, परन्तु उसका दर्शन केवल मानव शरीर में ही होता है, अन्यत्र नहीं। और शरीरों में परब्रह्म परमात्मा विद्यमान है, पर उसके ज्ञान के साधन नहीं। परब्रह्म के रूप की इस शरीर में ही पहचान होगी। इसी से नर तन श्रेष्ठ है। यदि यह शरीर छूट गया तो मनुष्य से इतर ८३,६६,६६६, शरीरों में भटकना पड़ सकता है। सब भूतों में परब्रह्म है तो सही पर जानना यहीं संभव है। विद्वान् मनुष्य सारे शरीरों में चैतन्य आत्मा को जान लें तो ‘अमृताः भवन्ति’ मरने से छूट जाते हैं। यदि मानव शरीर में आकर के भी उसे सब प्राणियों में नहीं देखा तो महती हानि है यह निश्चित है।

एक गरीब आदमी लकड़ी काटकर कोयला बना कर बेचा करता था। एक दिन राजा-रानी उसी जंगल में गये। राजा शिकार के पीछे दूर चला गया। रानी जंगल में रह गई। रोने लगी। लकड़ी काटने वाले ने पूछा और रानी को ले जाकर राजा के पास पहुँचा दिया। राजा ने प्रसन्न होकर पूछा 'क्या काम करते हो?' पता चलने पर राजा ने कहा 'हमारा दो मील का चन्दन का बगीचा है, इसे दे दो।' बड़े-बड़े चन्दन के वृक्ष थे, उसने काटे और जलाकर कोयला बनाया, बेचने लगा। अपने को कोयले से धनी माना। राजा के यहाँ यज्ञ होने वाला था। चन्दन की लकड़ी १००० रु. की मँगाई। तब तक सारी लकड़ी कोयला में चुक गई थी। इधर-उधर से इकट्ठा कर के एक मन लाया। १००० रु. मिला तो कीमत पता चली। बड़ा पश्चात्ताप हुआ। दुःख में प्राण छूट गये। इसी प्रकार मानव शरीर पाकर जीव विषयभोग रूपी अग्नि में उसे कोयला बनाकर जाता है तो जब पुण्य से स्वर्ग में आदर सत्कार होता है तब पश्चात्ताप होता है कि अधिक पुण्य क्यों नहीं किया! अविवेकी जीव की दशा ऐसी होगी। यह शरीर याद दिलाने के लिये है। इसी में काम बना लो। 'स बुद्धिमान् मनुष्येषु'। 'स्वकार्यं साधयेत् धीमान् कार्यभ्रंशो हि मूर्खता'। मानव जीवन के उद्देश्य की दृष्टि से मानव जीवन की सफलता है। इसे धारण करके कल्याण को प्राप्त करें।

भगवद्गीतानुसार मानव जीवन का उद्देश्य

स्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज

आज का विचारणीय विषय है—मानव जीवन का उद्देश्य। किन्तु अब विचार करना है गीता के आधार पर। प्रातः काल इसी पर विचार किया था उपनिषदों के आधार पर। हमारा सनातन-धर्म तिपाई पर खड़ा है—श्रुति, स्मृति, दर्शन। श्रौत प्रस्थान वेद है। गीता स्मार्त प्रस्थान है, ब्रह्मसूत्र दर्शन प्रस्थान है। इन तीनों से निर्णीत सनातन धर्म है। जिस तिपाई के तीनों पैर विरोधी होंगे वह लुढ़क जायेगी। सनातन धर्म के तीनों पाये एक ही लम्बाई के हैं। भले ही अलग-अलग हैं। वेदों में धर्म का प्रतिपादन दो स्तरों पर किया—(१) प्रवृत्ति (२) निवृत्ति मार्ग। कर्म-मार्ग और कर्म-संन्यास का मार्ग, दो स्तर हमारे सामने आये। ऋषियों के मन में भ्रान्ति नहीं थी पर कालान्तर में इन्हें विरोधी माना जाने लगा। आज युग-धर्म में भी दो मतवाद हैं। एक कर्मकाण्ड को ही सब कुछ मानते हैं, दूसरे कर्म-काण्ड की मर्यादा को निरर्थक मानते हैं। कर्म-काण्ड की मर्यादा को गत हजारों वर्षों से खोखला किया जा रहा है। बुद्ध ने इस मर्यादा को खोखला करना शुरू किया। जब भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण करने जाते हैं तो लोग हमसे पूछते हैं 'मन्दिर क्यों साथ रखते हो?' हम लोग तो अखण्ड चिन्मात्र को मानते हैं पर यह पेट नहीं मानता अर्थात् व्यावहारिक स्तर पर इहलोक की तरह परलोक के

व्यवहारों का भी निर्वाह आवश्यक है। कुछ लोग कर्म को निरर्थक मानते हैं, तो दूसरे लोग ज्ञान मार्ग को हेय मानते हैं। प्राचीन काल में मीमांसक लूले-लंगड़े-नपुंसकों को कर्मसंन्यास का अधिकारी मानते थे। आज भी निवृत्ति को बुरा माना जाता है समाज में। इस संसार के कल्याण के लिये कुछ नहीं करते तो जीवन व्यर्थ—यह भाव प्रचलित है। गीता ने इन दोनों मार्गों को जोड़ने का पुल बनाया। भगवान् ने कहा—‘स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।’ यह पुल पहले लुप्त हो गया था। उसे फिर से अर्जुन को उपदेश देकर उपलब्ध कराया।

कर्म-नैष्कर्म्य का रहस्य गीता के अलावा कहीं स्फुट नहीं है। भगवान् अर्जुन को कर्म-मार्गी जीवन वाला मानते रहे। आज तक उसे लड़ने में कभी शंका नहीं हुई थी। लड़ना ही उसका धर्म था। लड़ाई बन्द करने को धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से कहा था। धर्मराज धर्म समझते थे। किन्तु बड़ी लम्बी चौड़ी युक्तियाँ युद्ध न करने की उस समय सुनी तो वे अर्जुन के ऊपर कुसंस्कार छोड़ गयीं। भगवान् ने समझाया कि जिसे शान्ति समझ रहा है यह अकीर्ति का हेतु है। छोड़ नपुंसकों की बात। एक बार विराट् के घर में नपुंसक होने का शाप भुगत आया है। वह साल बीत चुका। अभी क्या वह संस्कार गया नहीं! अर्जुन की समस्या हमारी भी है। वैदिक धर्म मानता है कि कर्म जिसने नहीं किया, उसे नैष्कर्म्य से क्या लाभ। कोई कहे ‘मैंने अपने लड़कों का मोह छोड़ दिया।’ पूछो ‘लड़के कितने थे।’ बोले, ‘हुए ही नहीं।’ तो जैसे मोह छूटना नहीं माना जायेगा ऐसे ही कर्मानुष्ठान-पूर्वक कर्मसंन्यास का महत्त्व है। कर्म से नैष्कर्म्य की प्राप्ति होगी। कर्म में नैष्कर्म्य—यह एक कदम आगे जाना है। ‘कर्मणि अकर्म यः पश्येद् अकर्मणि च कर्म यः स बुद्धिमान् मनुष्येषु।’ यह कर्मत्याग से एक कदम और आगे है। अब तक सुना है कि ज्ञान होने के बाद कर्म रह सकता है। किंतु साधन अवस्था के परिपाक में भी कर्म में अकर्म-दर्शन कर्तव्य है। सिद्धावस्था में तो कर्म रह ही सकता है। ‘लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि’। लोकसंग्रह के लिये ज्ञानी की प्रवृत्ति सम्भव है। ज्ञानी का कर्म आदर्श है। अर्जुन जैसा

श्रेष्ठ व्यक्ति कर्म को छोड़ेगा तो उसे देखकर दूसरे भी कर्म करना छोड़ देंगे। इसलिये भगवान् ने उसे मना किया। उसे समझाया कि सब कर्म करते हुये भी कर्म में लिप्त नहीं होगा तब ज्ञानी हो जायेगा अतः अकर्म में आग्रह मत कर। भगवान् ने कहा मुझे देख। मैं ज्ञानी गुरु हूँ। 'नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि। मुझे कुछ पाना नहीं है। फिर भी मैं कर्म में लगा हूँ। यदि मैं कर्म करना छोड़ दूँ तो सारे संसार का उच्छेद हो जाये! कर्म छोड़ने से मुझे पाप नहीं लगेगा फिर भी प्रजा पालनार्थ करता ही रहता हूँ।

सर्वथा अज्ञानी है तो साधक चित्तसंशोधनार्थ कर्म करे। यदि कुछ ज्ञानी है तो 'कर्मणि अकर्म यः पश्येत्' की सावधानी से कर्म करे। इस प्रकार कर्म में अकर्म का विलक्षण पुल भगवान् ने बनाया। केवल कर्मत्याग ही भगवान् को इष्ट होता तो लोक-संग्रह की दृष्टि नहीं रखते। अपने कल्याण की, मोक्ष की दृष्टि नहीं रखते हुये लोककल्याण के लिये कर्म करना गीता की दृष्टि से मानव जीवन का उद्देश्य है।

गीतानुसार मानवजीवन का उद्देश्य

स्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज

आज का विषय है—‘मानव जीवन का उद्देश्य।’ चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने पर मानव शरीर मिला है। उसका क्या कर्तव्य है? जो कर्तव्य बतलाया है वही उद्देश्य है। गीता में १८ अध्याय हैं। सामवेद की छान्दोग्य उपनिषत् का महावाक्य तत्त्वमसि है। इसमें तीन पद हैं। तीनों पदों के अर्थ का निरूपण गीता में है।

तत्=परमेश्वर। त्वम्=जीव। असि=अभेद। १८ अध्यायों में तीनों पदों के अर्थ का निरूपण किया है। पहले षट्क में त्वं-पदार्थ का निरूपण करने के लिये कर्म का निरूपण किया। प्रधानता पहले ६ अध्यायों में कर्म की है। कर्म करने वाला जीव है। प्रारम्भ में कर्म करने वाले जीव को भगवान् ने बताया। ७ से १२वें अध्यायों तक भक्ति समझायी है। भक्ति किसकी होती है? तत्-पदार्थ परमेश्वर की। इसलिये तत्-पदार्थ का निरूपण दूसरे षट्क में किया। कर्म व भक्ति का उपदेश निष्काम भाव से उन्हें कराने के लिये है। इन्हें निष्काम भाव से करेगा तो जीव तीसरे षट्क का अधिकारी बनेगा। तेरहवें से अठारहवें अध्याय तक ज्ञान का उपदेश है। भगवान् ने तेरहवें अध्याय में बताया कि ज्ञान किसका पाना है। जीव और ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान ही पाने योग्य है। वास्तव में दोनों एक ही हैं। भिन्न स्वरूप वाले नहीं। यह बतलाया—

‘ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।

अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥’

भगवान् ने कहा कि जो जानने योग्य है, जिसे जानना चाहिये, जिसे जानने के लिये मानव जीवन मिला है वह बताऊँगा। उसको जानने का फल कहा—‘यत् ज्ञात्वा अमृतमश्नुते।’ अमृत का अर्थ है कि फिर आगे कभी मरण होता नहीं। यह ज्ञान का फल कहा। परब्रह्म का स्वरूप कहा ‘अनादिमत्परं ब्रह्म’ जो ज्ञेय वस्तु है वह अनादि है, वही परब्रह्म है। परब्रह्म ही जानने योग्य है। मानव जीवन का उद्देश्य भगवान् बता रहे हैं। ‘न सत् न असत्’ कार्य और कारण से विलक्षण तत्त्व जान लेना ही प्रधान उद्देश्य है।

जिस परब्रह्म में कार्य-कारण-भाव नहीं उसे तत्-पद से कहा। अर्जुन ने पूछा ‘उसे कहाँ, कैसे जानें? उस ज्ञेय को कहाँ, किस रूप से, किस साधन से जानें?’ भगवान् ने इन तीनों का उत्तर दिया—

‘ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।’

इसमें तीनों प्रश्नों का उत्तर है। जो जानने योग्य परब्रह्म बताया वह जहाँ जानने में आता है, जिस साधन से जानने में आता है उसे भी बताता हूँ। भगवान् ने पहले अर्जुन को उस परब्रह्म का स्वरूप कहा। मानव शरीर से ज्ञेय का स्वरूप ज्ञान है। ज्ञेय का स्वरूप ही ज्ञान कहा। ज्ञानस्वरूप ही वास्तविक ज्ञेय है। अतः भगवान् ने परब्रह्म का स्वरूप ज्ञान बताया। ज्ञानस्वरूप है परब्रह्म परमेश्वर। ज्ञानस्वरूप कैसे है? ‘हृदि सर्वस्य विष्ठितम्’। सारे प्राणियों के हृदय में ज्ञेय ब्रह्म स्थित है। हिमालय की कन्दरा में ही उसे नहीं कहा वरन् सारे प्राणियों के अत्यन्त समीप बताया। वह सबकी बुद्धि में स्थित है। सारे प्राणिमात्र के हृदय में वह परमात्मा विद्यमान है जिसको जानने से जन्म-मरण का चक्कर छूटता है।

सारे प्राणियों के हृदय में जब बैठा है तो दीखता क्यों नहीं? सूर्य का प्रकाश सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक है, पर नेत्रहीन नहीं देखता। इसी प्रकार ज्ञान के दर्शन का साधन बताया ‘ज्ञानगम्यम्’। वह परमात्मा ज्ञान-गम्य है। ज्ञान दो प्रकार का (१) स्वरूप ज्ञान (२) वृत्ति ज्ञान। घट, पट का ज्ञान वृत्ति ज्ञान है। परब्रह्म भी वृत्तिगम्य है। मनोवृत्ति से वह

जानने में आयेगा। मन की वृत्ति कैसी? प्रमाणजन्य वृत्ति। परब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान कराने की वृत्ति मन की ही है। पर वह वृत्ति संस्कारों या पदार्थों से नहीं, महावाक्य प्रमाण से बनेगी। गुरु के द्वारा महावाक्य का श्रवण होगा तब वह वृत्ति बनेगी। गुरु ने कहा—‘अयमात्मा ब्रह्म’ यह आत्मा ब्रह्मरूप है। इतने से ज्ञान नहीं होगा। स्वरूप की पहचान जिसे हो गई उसे ही अभेद का ज्ञान होगा।

तीन जन्म में ब्रह्म का दर्शन कोई महात्मा नहीं करा पाता। पर आज कलियुग में लोग तीन मिनट में ब्रह्मदर्शन कराने का वादा करते हैं! त्वं-पदार्थ का शोधन जिसने किया है वही वास्तव में श्रवण करेगा गुरु से। विवेक भी उसी में होगा जिसका अन्तःकरण शुद्ध है। शुद्ध अन्तःकरण के लिये पहले निष्काम कर्म और भक्ति को कह आये। फिर विवेक होगा, फिर वैराग्य। वैराग्य के बाद गुरु से सुनो ‘अयमात्मा ब्रह्म’। आत्म-शब्द का अर्थ है चिन्मात्र अर्थात् शरीर के अन्दर जानने वाली चीज़। पदार्थों का ज्ञान होता है, पदार्थ ज्ञेय हैं। उनको जो जानता है अर्थात् जानने वाली चीज़ ज्ञान है। किसी ने कटु वचन कह दिया तो उसके वचन सुनते ही मन के अन्दर जो क्रोधाकार वृत्ति बनती है, उसे भी जानते हो, उसका ज्ञान होता है। उसकी पहचान करने वाला कौन? कहोगे ‘हम’। तुम कौन? यही कह सकते हो ‘जानने वाले’। जानने वाला चेतन होता है, जड़ नहीं।

रात्रि के समय आदमी घर में बैठा है। दिन में फिल्म देखी थी, वह याद आ गई। स्मरण आते ही खड़ा हो जाता है, फिर सिनेमा में जाने को तैयार हो जाता है। फिल्म को जानने वाला कौन? मैं चेतन। मिश्री की डली खाई, गुड़ की डली भी खाई। दोनों के मिठास में फर्क रहा। मिठास का भेद किसने जाना? भगवान् ने कि तुमने? भेद का ज्ञाता कौन? ज्ञानस्वरूप ने भेद जाना है।

नेत्र जब मूँदते हैं तब क्या दीखता है? अंधेरा। उस अंधेरे को देखने वाला कौन? अन्धकार को जानने वाला भी आत्मरूप है। वही सारे

पदार्थों का ज्ञानस्वरूप है। वृत्ति को छोड़कर ज्ञान ही वास्तव में ज्ञान है। वही ज्ञानस्वरूप सारे प्राणियों के अन्तःकरण में है।

‘अयमात्मा ब्रह्म’ महावाक्य ने बताया कि यह आत्मा ब्रह्मरूप है। जैसे तुम्हारी बुद्धि में रहता है वैसे दूसरों की बुद्धियों में भी रहता है, वह व्यापक भी हुआ जैसे सारे घरों में सूर्य का प्रकाश है क्योंकि वह व्यापक है। प्रत्येक प्राणी की बुद्धि में जो ज्ञान है वह ज्ञान-स्वरूप परमात्मा ही है। ‘प्रज्ञानं ब्रह्म। तत्त्वमसि। अयमात्मा ब्रह्म।’ ये तीनों महावाक्य गुरु के वचन हैं। जब गुरु ने कहा इन तीनों को तो अभेद आकार की वृत्तिरूप ज्ञान होता है।

‘अहं ब्रह्मास्मि।’ यह ज्ञान होता है तो जाना कि मानव जीवन का लक्ष्य प्राप्त हो गया। यह ज्ञान होगा कब? ‘अनित्यम् असुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।’ शरीर मृत्यु की तरफ जा रहा है। देर मत करो। शरीर में रहते हुये सुख-शान्ति नहीं मिलेगी। शरीर दुःखरूप है। सर्वथा सुखी कोई मनुष्य नहीं है। यह शरीर असुख है। इसका अभिमान रहेगा तो जीव दुःख भोगता ही रहेगा। ऐसे शरीर को प्राप्त कर क्या करे? ‘मां भजस्व।’ मेरी भक्ति कर। तुम जो चाहते हो वह भक्ति से मिलेगा। जीव क्या चाहता है? सुख, नित्य सुख। भगवान् ने कहा कि ‘वह मेरे भजन से ही मिलेगा।’ संसार में क्यों नहीं मिलेगा? संसार अनित्य है। मैं नित्य हूँ। मेरा भजन करेगा तो मुझे प्राप्त हो जायेगा। मैं नित्य और सुखरूप हूँ। मानव भजन करे तभी अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा तत् त्वम् पदार्थों का शोधन पूर्वक महावाक्यजन्य ज्ञान से जीव को अपने स्वरूप परब्रह्म का ज्ञान होगा।

जल में सूर्य का आभास सूर्य नहीं है। जल उपाधि से सूर्य जैसा लगता है, पर सूर्य का सच्चा स्वरूप आकाशस्थ है। जीव अन्तःकरण में चेतना का आभास है। वास्तव में उसका स्वरूप अन्तःकरण में चिदाभास नहीं, सच्चा स्वरूप परब्रह्म है। उसकी पहचान ‘ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्’ से कही। ब्रह्माकार वृत्ति जब बनेगी तब ब्रह्म का

अनुभव होगा, इतर वृत्तियों में नहीं। अपने शरीर में चिदानन्दमय ब्रह्म का अनुभव करके फिर आवागमन होता नहीं, परम पद की प्राप्ति होती है। आप भगवान् की प्राप्ति के लिये यहाँ आये हैं तो एक दिन अवश्य प्राप्त होगा। बद्रीनारायण के रास्ते में थोड़ा-थोड़ा चलने पर भी यात्री एकदिन पहुँच ही जाता है।

संसार से मुक्ति

स्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज

‘संसरति इति संसारः’ घूमना। जीव जब कभी किसी भी योनि में जाता है, वहाँ उसका चित्त स्थिर नहीं होता अतः निरन्तर घूमता चला आ रहा है, विश्रान्ति नहीं मिली। संसार कहाँ है, किसमें है? शरीर जड़ है जैसे पत्थर और दीवाल और वह विकारी है—जन्मता है, बढ़ता है, घटता है, उसका विनाश हो जाता है। इसके अन्दर आत्मचेतन, निर्विकार, अविनाशी है। यह संसार है जिसमें व्यवहार होता है। वह जड़ में भी हो नहीं सकता, चेतन में भी नहीं हो सकता। संसरण की प्रतीति न आत्मा में, क्योंकि वह निर्विकार है और न शरीर में क्योंकि वह जड़ है।

‘चित्तमेव हि संसारस्तस्माद् यत्नेन शोधयेत्’ चित्त अर्थात् चिन्तन करने वाला। शरीर में जो चिन्तन करता है वह चित्त है। दिन भर के काम का वह शाम को चिन्तन करता है। पर क्या चित्त जड़ नहीं? पंच-भूतों से ही अहंकार आदि बना, पर चित्त के साथ में चेतन का सम्बन्ध है अतः वह संसार का चिन्तन करने वाला है।

शरीर महाभूतों के तमोगुणांश से बना। चित्त उनके सत्त्वगुण से बना। अतः चित्त में उसी अन्तरात्मा का आभास पड़ता है। सूर्य का प्रकाश शीशे और घड़े दोनों में पड़ता है। पर शीशा आभास ग्रहण करता है, घड़ा नहीं। शरीर पञ्चभूतों के तमोगुण से बना, चित्त उनके सत्त्वगुण से बना अतः आभास चित्त में पड़ता है। खुद चित्त जड़ है। आत्मा चेतन

है। आभास पड़ते ही तीसरा 'संसार' बना! लवण का रंग सफेद, हरिद्रा पीली, दोनों के मिलाने से लाल रंग हो जाता है। हल्दी और लवण में लालिमा नहीं थी। ऐसे जड़-चेतन के सम्बन्ध से चित्त से संसार खड़ा हो गया। संसार चिन्तन के अलावा कुछ भी नहीं है।

अतः भगवान् वशिष्ठ कहते हैं कि इसकी यत्न से शुद्धि करे, जैसे सुनार सोने का शोधन करता है। चित्त में खोट क्या है?

चित्तं चित् च विजानीयात् तकाररहितं यदा ।

तकारो विषयाध्यासो जपारागो मणौ यथा ॥

चिन्मात्र परब्रह्म में तो संसार की प्रतीति नहीं। चित् में 'त' जुड़ने से चित्त बनता है। चित् अर्थात् चिन्मात्र। चित्+त=चित्त। तकार निकालकर चिन्मात्र परब्रह्मरूप रहता है। तकार होने से वह संसार का निर्वाहक है। 'तकारो विषयाध्यासः' संसारी विषयों का चिन्तन, अध्यास ही 'त' का अर्थ है। यथा स्फटिक मणि हरे पत्ते के संयोग से हरा, लाल फूल के सम्बन्ध से लाल दीखता है। मणि में लालपना, हरापना नहीं, ऐसे चेतन में संसार का अभाव है। पर संसार का चिन्तन होते ही सारा संसार वहीं खड़ा हो जाता है।

चित्त का शोधन यही है कि संसारी चिन्तन छोड़ना। यही संसार की निवृत्ति कही जाती है। 'अनात्मचिन्तनं त्यक्त्वा कश्मलं दुःखकारणम्'। अनात्म-चिन्तन मन को मैला करने वाला है। संसार के विषय सब तमोगुण से बने हैं। वे सारे मन को मैला करके दुःख का कारण बनते हैं। 'चिन्तयेद् एकमानन्दरूपम् आत्मानं' सुख के लिये आनन्दरूप परमात्मा का ही चिन्तन कर्तव्य है। दुःख का कारण अनात्म-चिन्तन है। अतः साधक अनात्म-चिन्तन का त्याग करे। यह चिदात्मा सुखरूप है, इसमें दुःख का सम्बन्ध हुआ नहीं, होगा भी नहीं। आत्मचिन्तन छूटते ही दुःख की प्राप्ति होती है।

दो महात्मा एक शहर में रहते थे। ज्ञानी उत्तर की तरफ रहते थे। दक्षिण की तरफ रहने वाले केवल योगी थे; जगत् को सत्य समझते थे। जगत् के मिथ्यात्व का ज्ञान केवल ज्ञानी को होता है। वे दोनों

कभी-कभी मिला करते थे। ज्ञानी कहते थे 'संसार की सत्यता का परित्याग करो। जब तक सत्य समझते रहोगे कभी दुःख से छूटोगे नहीं।'

एक दिन योगी घंटे की समाधि में थे। उसी समय ज्ञानी महात्मा भी आ गये। वे योगी भी थे। उन्होंने विचारा, 'निर्विकल्प समाधि है या सविकल्प यह देखना चाहिये।' अपने मन को उनके मन में मिलाया तो देखा कि वे कहीं एक दूसरे ग्राम में गृहस्थी के रूप में बन गये थे। सात लड़कियाँ हो गईं। अब चिन्ता हो गई कि शादी कैसे होगी। रुपया था नहीं। जो ज्ञानी थे वे भी वहाँ पहुँच गये। योगी को बड़ा दुःख हो रहा था तो ज्ञानी ने कहा 'क्यों दुःखी हो?' वे बोले, 'गृहस्थ के घर में जवान लड़की दुःख तो देगी। तुम तो महात्मा हो, तुम्हें क्या?' ज्ञानी ने कहा 'तू भी महात्मा है।' वह बोला 'मैं गृहस्थी हूँ। इस झंझट से कैसे छूटूँ?' ज्ञानी महात्मा ने कहा 'चित्त की कल्पना छोड़ दे।' योगी बोला 'यह छूटती नहीं।' इतने में ज्ञानी ने उसकी समाधि छुड़वा दी। पूछा 'कहो, लड़की कहाँ गई?' जब तक कल्पना नहीं छूटी तब तक दुःख में पड़ा रहा था। वास्तव में दुःख का कोई हेतु था नहीं।

पर तकारूप विषयाध्यास छोड़ा जाता नहीं। जब तक यह छूटेगा नहीं, तब तक दुःख ही दुःख है। अनात्म-चिन्तन करने से जैसे संसार खड़ा हुआ वैसे आत्म-चिन्तन से यह छूट जाता है। यह बात तब समझ में आती है जब मन शुद्ध हो। संसारी चिन्तन छोड़कर इधर का ध्यान करे तो संसार से मुक्ति अवश्य मिल जायेगी।

तेइसवाँ वार्षिक महोत्सव कर्मयोग

स्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज

शिवरात्रि से मेष संक्रमण तक अथवा सोमवती अमावस्या तक कुम्भ पर्व है। ये वीतराग महात्मा कुंभ से सीधे यहाँ आये। सामान्य गृहस्थ भी कुम्भ छोड़कर नहीं आते तो महात्मा लोगों का आना कठिन है। पर इनकी कृपा से यहीं पर आप लोगों को कुम्भ-पर्व का आनन्द मिल जायेगा। गंगा दो प्रकार की—एक जो चर्मचक्षु से दीखे, दूसरी, जो मानस चक्षु से दीखे। ‘त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगंगा’। तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली संवित्, ज्ञानरूपिणी गंगा साक्षात् महाराज जी के रूप में उपस्थित है।

कर्मयोग का आज, कल भक्ति और वेदान्त का विचार किया जायेगा। सर्वज्ञ शंकराचार्य जी के अनुसार—‘द्विविधो हि वेदोक्तो धर्मः प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च।’ वेद में विहित धर्म दो तरह का है, एक जिसका परिचय है प्रवृत्ति और दूसरा जिसे पहचानते हैं निवृत्ति से। प्रवृत्ति, जिसमें कुछ करने को कहा जाये। निवृत्ति—कर्मेन्द्रियों को रोककर कुछ जानने को कहा जाये। इसीलिये निवृत्ति ज्ञानप्रधान होगी। प्रवृत्ति कर्मप्रधान होगी। कर्मप्रधान प्रवृत्ति के दो भेद हैं—धर्म और योग। आचरण, व्यवहार को लेकर सामान्य धर्म कहे हैं। ‘आचारप्रभवो धर्मः’। आचार से ही धर्म प्रभावी होता है। किन्तु धर्म केवल लौकिक व्यवहार ही नहीं परमात्मा के साथ व्यवहार भी धर्म है। ‘अयन्तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम्’ मनु के अनुसार वह परम धर्म है, उसी को कहा योग,

जिसमें पारमार्थिक क्रिया करनी है। धर्म में व्यवहार तो करना है, पर परम धर्म में योग ही व्यवहार है।

निवृत्ति भी दो प्रकार की—सगुण तथा निर्गुण। कर्मेन्द्रियाँ संयत कर सगुण को जानना भक्ति है तथा निर्गुण को जानना ज्ञान है।

सर्वप्रथम, धर्म क्या है? आचार क्या है? उसे क्यों करें? इतने नियमों से बँधें क्यों? शास्त्र का उद्देश्य आपको नियमों में बाँधना नहीं है। गौडपादाचार्य (४.८१) कहते हैं—

अजम् अनिद्रम् अस्वप्नं प्रभातं भवति स्वयम् ।

सकृद् विभातो ह्येवैष धर्मो धातुस्वभावतः ॥

ब्रह्म का स्वरूप, स्वभाव ज्ञान है। ‘धातु’ शब्द का प्रयोग कई तात्पर्य से होता है। धाता, विधान करने वाला, निर्माण करने वाला ईश्वर कहा जाता है। जब तक अविद्या का नाश नहीं तब तक ब्रह्म जिस रूप में दीखे वह ईश्वरस्वरूप ही नियामक है। उसने जिस स्वभाव का तुम्हारे लिये नियम कर दिया वही तुम्हारा भी स्वभाव है। ईश्वर ने विधान न किया हो, जीव ने स्वयम् लाद लिया हो, वह अपना धर्म नहीं, वह तो अधर्म है। परमात्मा का निश्चित किया ही जीव का भी स्वभाव है। अथवा धातुस्वभाव अर्थात् वस्तु का स्वभाव। परमार्थ वस्तु सकृद् विभात है, नित्य ज्ञानरूप है। वह स्वरूप है। अतः जैसे ही ठीक से बताया जाता है वैसे ही विभात, प्रकाशित हो जाता है। बुद्धि का धर्म अनाग्रह है। सच्ची बात वह पकड़ लेती है, फिर छोड़ेगी नहीं। बीसियों साल का अज्ञान तत्त्वज्ञान से खट दूर हो जाता है। जब तक दूर नहीं होता तब तक मानना चाहिये कि वास्तविक बात प्रकट नहीं हुई। जो सुन रहा है धर्म को वह जानता नहीं, इसीलिये सुन रहा है। जानता होता तो सुनाता! वह सुनना चाहता है। हमारा ज्ञान उसकी बुद्धि में घुस नहीं रहा है तो बताने में दोष है। हारा पहलवान हराने वालों से नया दाँव सीखता है। यदि शस्त्र चलाया, सामने वाले का बख्तर नहीं टूटा तो अपने शस्त्र को तेज़ करो। आज सनातन धर्म के ‘अस्त्र’ के उपदेश का प्रवेश जनमानस में हो नहीं पा रहा है। अपनी बात पुत्र-पुत्री-पोते तक

नहीं मानते! धर्म-प्रचारक बड़े क्षेत्र में काम करता है पर 'सकृद्-विभात' स्वरूप को प्रायः भूल जाता है। धर्म का मूल आधार स्वयं परमात्मा है, उस पर निष्ठा हो तभी धर्म हृदय से स्वीकार होगा।

एक श्रेष्ठी व्यापारी को उसकी पत्नियाँ स्नान करा रही थीं। अकस्मात् सेठ के ऊपर गरम पानी की एक बूंद गिरी। उसकी एक पत्नी रो रही थी। सेठ ने पूछा 'रो क्यों रही है?' बोली 'मेरे भाई को वैराग्य हो गया है। एक-एक साल में एक-एक पत्नी छोड़ेगा। चार पत्नियाँ हैं।' सेठ ने कहा, 'मत घबरा, वह कभी संन्यासी नहीं बनेगा। एक-एक को छोड़ने वाला कभी संन्यासी नहीं बनता।' पत्नी ने पूछा 'तो संन्यासी कैसे बनता है?' उसने कहा 'दिखाऊँ?' पत्नी ने कहा 'हाँ'। सेठ उठा और चल दिया। धर्म के मार्ग में धीरे-धीरे प्रवेश नहीं होता।

लोग योजना बनाते हैं धर्मानुष्ठान की, लेकिन हर योजना असफल होने के लिये ही बनती है। धर्म की योजना बनाते हैं 'अब मैं पचास साल का हूँ। पाँच साल के बाद पेंशन आने लग जायेगी फिर ऋषीकेश में वेदान्त सुनूँगा।' लेकिन चार वर्ष में महँगाई बढ़ जाती है, लड़की के पति की नौकरी नहीं है, पढ़ा लड़का भी बेकार है, इत्यादि। परिस्थितियाँ सामने आ जाती हैं तो योजना पूरी होती नहीं। अधर्म दुःख का कारण है, यह निश्चय होते ही फिर एक क्षण भी अधर्म नहीं हो सकेगा। शीशी में जहर है। यह जानते ही क्या उसे धीरे-धीरे छोड़ते हो? धर्म सुख का कारण है यह जानते ही अधर्म सर्वथा छूट जायेगा। हाँ, इससे पहले जो गलतियाँ हो गईं उन्हें भोगना पड़ेगा।

धर्म पालन करते ही हल्कापन आता है। आजकल लोग धर्म को 'बलिदान' समझते हैं। अधर्म के मध्य में धर्म को छू भर लेते हैं। जब धर्म का वास्तविक आधार समझ आ जायेगा, सकृद् विभात अर्थात् स्व-प्रकाश परमेश्वर समझ आ जायेगा तब समस्या का हल होगा। चिकित्सक रक्त, पेशाब, चाप आदि की तरह-तरह की परीक्षा करते हुये दवाई देता है, पर शंका बनी रहती है क्योंकि अभी निदान नहीं हुआ। ज्यों ही रोग के कीटाणु पता चले, फिर औषधि विश्वास से लेते हो। जब

तक धर्म का प्रत्यक्ष अनुभव न हुआ तब तक जानो कि निदान नहीं हुआ। कभी ज्योतिषी शनैश्चर बतायेगा, डाक्टर कीटाणु बतायेगा, वकील गलत पैरवी बतायेगा, दुःख का कारण सब बताते रहेंगे किन्तु दुःख का एकमात्र कारण है अधर्म।

सुखमात्रियते नित्यं दुःखं विव्रियते सदा।

यस्य कस्य च धर्मस्य ग्रहेण भगवान् असौ ॥ (माण्डू.४.८२)

जब तक हम वास्तविक धर्म को न पकड़कर जिस-किसी को धर्म मानते रहेंगे तब तक सुख से वंचित हुए दुःख ही भोगते रहेंगे। आचार्यों ने स्पष्ट कहा है कि अविचार-पूर्वक जो भी मान लेने से अनर्थ ही मिलेगा, कल्याण मिलने वाला नहीं।

धर्म ही हमें वास्तविक तुष्टि देगा, उसके बिना हम अतृप्त ही रहेंगे। आज व्यक्ति और समाज दोनों में 'भूख' बढ़ती जा रही है। इस भ्रम में हैं कि भोग से यह भूख मिटेगी। ऐसा कभी होना सम्भव नहीं। भूख तो योग से मिटेगी, धर्म से दूर होगी, भोजन केवल शरीर को पुष्ट नहीं करता आन्तरिक कमी को पूरा करता है। माँ से प्रेम नहीं मिलता तो बच्चा अँगूठा चूसेगा। प्रेम की कमी को आइसक्रीम, लालीपाप, सिग्रेट, बीड़ी से पूरा करना चाहता है।

आज मनुष्य अन्तःकरण में परमात्मा को भर नहीं पाते। कोई यश को भरता है, कोई पैसा भर रहा है। कोई गहने, कपड़े खरीदकर अन्दर की कमी पूरी करना चाहता है। किन्तु जितने अनात्मा जोड़ते जायेंगे उतना नित्य सुख ढकता रहेगा। दुःखों से अर्थात् अन्य धर्मों से सत्य धर्म न ढकना यह सिखाने का साधन योग है। अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करना, आचार में लाना धर्म है। आत्म-धर्मों को आचरण में प्रकट करना व्यावहारिक धर्म है, अनात्मधर्मों को रोकना योग है। इसके द्वारा हम आपे में स्थित रहते हैं। यह धर्म बोझ नहीं होता है वरन् जितने बोझ लाद लिये हैं उन्हें हटाता है।

तुम जन्मरहित, निद्रारहित स्वप्नरहित हो—यह स्वरूप प्रकट करना धर्म का कार्य है।

योग से दूसरे जो धर्म स्वाभाविक नहीं हैं, उनको रोकना है। रक्षणात्मक युद्ध योग है। इसमें सामने के दाँव रोकने हैं। अनात्म-धर्म सामने आते हैं, भोगकामना, क्रोध, लोभ आदि। धर्म या योग का अनुष्ठान है कि उन्हें तोलकर विवेकपूर्वक उनकी काट करो, वे हावी न हो पायें। तुम्हारे सुख को ढाँक न पायें, तुम्हें दुःखी, अतृप्त विचलित न कर पायें। इसके लिये परमार्थ स्वरूप पर दृष्टि स्थिर रखकर व्यवहार सम्पन्न कर लो। कर्मयोग इसी कौशल को सम्पन्न करता है।

कर्मयोग

स्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज

आज प्रातः काल बताया था कि योग से रक्षा करनी चाहिये। अब बचाव का तरीका बतायेंगे। यदि अस्त्र काम नहीं करता तो अस्त्र का परीक्षण करो। अनात्म पदार्थ आक्रमण करे तो कैसे बचें? अनात्म पदार्थों में रहते ही उनके आक्रमण को सहने की शक्ति बढ़ानी पड़ेगी। टैंक लेकर दुश्मन आया तो हम भी टैंक से लड़ सकते हैं। दूसरा तरीका है कि हवाई जहाज से बमबारी करें टैंक पर। मन पर बैठकर अनात्म पदार्थों को सहने के लिये मन को दृढतर बनाना आवश्यक है।

मनसो निग्रहायत्तम् अभयं सर्वयोगिनाम्।

दुःखक्षयः प्रबोधश्चाऽप्यक्षया शान्तिरेव च ॥ (माण्डू.३.४०)

जिन्होंने वेदों को अवगाहन ठीक से नहीं किया ऐसे 'सर्वयोगिनाम्' बाकी अनात्मा को सत्य जानकर योग का अभ्यास करने वाले मन पर ही निर्भर रह जाते हैं। अभय, दुःखक्षय, शान्ति, सभी के लिये वे मन के आधीन हैं। परमार्थवेत्ता तो स्वतंत्रता प्राप्त करता है, मन की गुलामी से छूटता है। समुद्र से रत्न सब नहीं निकाल पाते, कुछ लोग वहाँ से केवल मछली निकालते हैं। कोई शंख, कोई फेन लाता है। कोई मिट्टी-तेल, पेट्रोल समुद्र में से लाता है। विलक्षण बुद्धिवाला ही बसरे का मोती निकालेगा। इसी तरह वेद से कोई निकालता है बेटा कैसे पैदा करें। कोई श्री-सूक्त निकालता है कि धन कैसे मिले। कोई स्वर्गादि लोकों को जाने का साधन निकालता है।

विलक्षण प्रतिभा वाला, जिसे गुरु ने बताया है कि वेद में वास्तविकता का ज्ञान भी है, वही मोती-सा परमात्मा ढूँढेगा क्योंकि उसे पता है कि वह वहाँ मिलेगा। गुरु ही बताता है कि वेद का रहस्य तो ब्रह्म है। गुरु यह रहस्य बताता है तो मानो अपना सर्वस्व देदेता है। रामकृष्ण परमहंस ने अन्तिम तत्त्व का उपदेश दिया तो रोने लगे। 'नरेन्द्र! मैंने तुम्हें सब दे दिया। अब मेरे पास अन्य कुछ नहीं बचा।' ऐसा उन्होंने इस तत्त्व का गौरव व्यक्त किया।

पारसमणि अच्छी चीज़ है, वह लोहे को सोना बना देती है। किन्तु वह लोहे को पारसमणि नहीं बनाती। गुरु जिसे छूता है, अपने उपदेश से जिसके हृदय का स्पर्श कर जाता है वह भी पारसमणि हो जाता है। ऐसा गुरु न मिले तो वेदरूप ज्ञान जलधि के अन्दर बैठे रहें तो भी मोती नहीं मिलेगा। बाकी योगी मन, जो अनात्मा है, के अन्दर बैठकर ही शोधन करते हैं। वेदान्त समझाता है कि टैंक से जीतना है तो हवाई जहाज में चढ़ो। मन से भी अभय, दुःख-क्षय प्रबोध मिलेगा, पर मन के अधीन बने रहोगे।

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' समाधि में दुःख क्षय भी है, प्रबोध भी है क्योंकि मन की सब वृत्तियाँ शान्त हैं। पर ज्यों हि बाहर जगत् के पदार्थों की चोट आई कि फिर सँभलना पड़ेगा। उपनिषद् का निर्देश है कि पूर्ण स्वतंत्रता के लिये अन्तःकरण, मन, बुद्धि पर्यन्त सब अनात्मा से दूर हटो। जाग्रत् के स्थूल पदार्थों से स्थूलाभिमानी विश्व ही सम्बन्ध रखता है। भूख-प्यास प्राण के धर्म हैं, भोजन से प्राण तृप्त होता है। आँख में रूप की भूख लगे तो रूप से उसकी तृप्ति होती है। कुछ भोग सूक्ष्म होते हैं। पुत्र के प्रति स्नेह है। उसे नाचते देखकर तुम तृप्त होते हो। किसी को गाली देकर भी तृप्ति होती है! अफसर को गाली नहीं दे सकते क्योंकि वह तुम्हें निकाल सकता है। अतः गुस्सा घर में निकालते हो, इससे भी भोग सम्पन्न होता है पर 'तैजस' का, सूक्ष्माभिमानी का। आनन्द का भोग प्राज्ञ करता है। इन तीनों वृत्तियों का भोग तीनों शरीरों के अभिमानी भले ही किया करें, इनसे तुम्हारा क्या बना!

विश्व, तैजस, प्राज्ञ इन तीनों के तुम तो प्रकाशक हो। जिसने इसे ठीक से समझा कि ये तीनों अनात्मा के कार्य हैं, वह भोगमात्र की निरर्थकता को समझता है। अग्नि का विषय लकड़ी है, उसे जलाकर न आग बढ़ती है न घटती है। विश्वादि का स्थूलादि क्योंकि स्वाभाविक विषय है इसलिये विषयसम्पर्क से इनमें कोई वास्तविक उपलब्धि नहीं, इनका सहज व्यवहार है।

मन से निवृत्त होकर किये जाने वाले योग का नाम 'अस्पर्श योग' है। मन के अन्दर घुसे रहकर भी लड़ाई करने के बजाय अच्छा है मन का स्पर्श किंचित् न करो। जहाँ अस्पर्श योग से भोक्ता-भोग्य भी से ऊपर गये कि जीवन-मरण जो आत्मवत् था वही अनात्मवत् हो गया। इस योग का अभ्यास होने पर मन के अन्दर प्रविष्ट होते हो तो लगता है 'मैं मर रहा हूँ।' तड़पते हो, जैसे गले में रस्सा बाँध कर कोई खींच रहा हो। मन की वृत्ति के साथ तादात्म्य होने पर लगे 'मैं मर रहा हूँ' यह इस योग में तप है। 'बाहर घाव न देखई भीतर चकनाचूर।' सहस्रार से लेकर पैर की एड़ी तक लगता है मानो कोई चीर रहा है, जब अनात्मा का अभेदेन स्पर्श होने लगता है। अस्पर्श योग पूर्णतः प्राप्त हुआ तो अनात्मा तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

'मेरा' जन्म असम्भव है यह तथ्य प्रत्येक व्यवहार में झिलमिलायेगा। अपने को शरीर वाला मानना ही पाप है। शरीर के सम्बन्ध से ही तो घर वालों का सम्बन्ध है। अनन्त जन्मों में न जाने कितने बच्चों को पाल-पोस कर छोड़ा। कितनी मातायें हुई, कितने पिता हुए। शरीर के साथ सम्बन्ध होने पर ही ये सताते हैं। संबंध बाध होने पर अपने शरीर के लिये भोग्य पदार्थों के संचय की प्रवृत्ति नहीं होती क्योंकि तब पाप की प्रवृत्ति असम्भव हो जाती है। समस्त व्यवहार जन्मरहित के प्रभाव से सर्वथा निष्पाप सम्पन्न होते हैं। शरीर को केन्द्र बनाकर वह कोई कार्य नहीं करता। स्वतंत्रता ही आत्मा को अनात्मा से अलग करती है। चेतन नियम के अधीन नहीं, जड नियम के अधीन है। आत्मा स्वतन्त्र है। आप उठ कर चल सकते हैं, पंखा उठकर नहीं चलेगा! तुम परतंत्र

लगते हो क्योंकि अनात्माओं से रिश्तेदारी कर रखी है।

प्राग्योतिषपुर जाकर भी कृष्ण ने नरकासुर का अन्त किया था। उसके महल के चारों ओर प्राकार बना हुआ था, दीवाल थी। मय दानव ने नगर बनाया था। मुर नामक दैत्य सात हजार की फौज लेकर पुर की रक्षा कर रहा था। भगवान् ने उसे समाप्त किया, दीवाल तोड़ कर प्रवेश किया तथा नरकासुर का वध किया। तब स्वयं पृथ्वी भगवान् के सामने आयी, कहा 'यह नरकासुर आपका ही पुत्र है! वराहावतार में आपने मुझे समुद्र से निकाला तो आपके स्पर्श से मुझे रति अनुभव हुई, उससे यह पुत्र उत्पन्न हुआ।' सोलह हजार एक सौ राजकन्याओं को उसने कैद कर रखा था। प्रश्न उठा कि इनका क्या हो? श्री कृष्ण ने उन्हें अपनी रानी बनाया! विचार करो, सामान्य आदमी भी अपने लड़के का नाम 'नरक' नहीं रखता। भगवान् ने उसका नाम नहीं बदला, जैसे भगवान् के द्वारा ही पृथ्वी से पैदा हुआ था वैसे सारा संसाररूपी नरक परमेश्वर से ही उत्पन्न हुआ, अविद्या शक्ति के सम्पर्क से। परमात्मा इस संसार का नाशक नहीं, बाधक नहीं वरन् साधक है। सूर्य की रोशनी घास को बढ़ाती है। उसी घास के सामने सूर्यकान्त मणि, उन्नतोदर शीशा रख दो तो सूर्यकिरणें घास को जला देंगी। अविद्या से जगत् का साधक परमात्मा ही विद्या से उसका बाधक हो जाता है। श्रुति कहती है 'सूर्य आत्मा जगतः।' आत्मा को ही कान्त बना लिया जिस ब्रह्माकार वृत्ति ने उस पर चढ़ा हुआ वही आत्मा जगत् को जला भी देगा। परमात्मा से प्रेम हो जाये तो वह जगत् के प्रति काम, क्रोध, लोभ आदि को जला ही देगा। 'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः' कामना, क्रोध और लोभ—ये तीन ही नरक के द्वार हैं। सभी पाप इन्हीं से प्रेरित हैं। शास्त्र कहता है, ब्रह्म मुहूर्त में प्रातः चार बजे जगना चाहिये। कामना कहती है कि प्रातः काल क्यों उठें? गर्मी में सुबह ४ बजे मीठी नींद आती है। सर्दी में भी प्रातः चार बजे मीठी नींद आती है। कामना से प्राप्त सोना, उसे छोड़ो अर्थात् कामत्याग करो। दान से लोभत्याग करो, दया से क्रोधत्याग करो। यही नरकासुर का वध है।

तत्त्व को जाना तो काम-क्रोध-लोभ नष्ट होंगे। काम ही नहीं रहेगा तो क्रोध स्वतः नष्ट हो जायेगा। नरकासुर ने १६१०० कन्यायें कैद कर रखी थीं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन, ये सोलह हैं। इनमें प्रत्येक की हजार अर्थात् अनन्त वृत्तियाँ बनती हैं। इन सारी वृत्तियों के समुदाय को परमेश्वर के अधीन करो। अविद्यालेश से रूपादि का संकल्प होता भी है तो उसे परमेश्वर के अधीन करो। जाने की इच्छा हो तो बद्रीनाथ जाओ, रस की वृत्ति हो तो भगवान् का प्रसाद खाओ, होटल के पत्ते मत चाटो। अविद्याकालका-सा भ्रमप्रेरित व्यवहार विद्यावस्था में नहीं होगा। सिद्ध जिसे स्वभाव से करता है, उसे साधक कर्तव्यरूप से प्रयत्न पूर्वक करे। स्थितप्रज्ञ का आचरण इसीलिये बताया जाता है कि साधक उन धर्मों का अभ्यास करे। वृत्तियाँ ईश्वरार्पण करना स्वभाव हो जाये तो 'प्रभात' अवस्था में पहुँचते हो, इसी में कर्म और भक्ति की सफलता है।

कर्मयोग

स्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज

सारे प्राणिमात्र क्या चाहते हैं? बतलाओ। धन, कपड़ा? सारी चीज़ों से होने वाला सुख चाहते हैं। मनुष्य ही नहीं, प्राणिमात्र की इच्छा है कि सुख मिले। सुख देने वाला कौन? धन, ऐश्वर्य नहीं है। सुख मिलेगा किससे? धर्म से। 'धर्मात् जन्म पुनः शरीरपटुता सौभाग्यम् आयुर्धनम्। धर्मः सम्यगुपासितो भवति च स्वर्गापवर्गप्रदः'। उत्तम कुल में जन्म दिलाने वाला कौन? धर्म। धर्मात् जन्म। उत्तम कुल में जन्म धर्म के प्रभाव से होता है। शरीरपटुता सौन्दर्य भी धर्म का फल है। अच्छे कुल में जन्म, शरीर की सुन्दरता धर्म के कारण होते हैं। नहीं चाहने पर भी शरीर बाँका टेढ़ा कूबड़ा काणा हो जाता है। धर्म न होने से पाप के प्रभाव से ये बातें मिल जाती हैं। तिजोरी में दस हजार के नोट पड़े हैं, उसी के पास गीता की पुस्तक पड़ी है। किसकी तरफ हाथ जायेगा? नोटों की तरफ। गीता की पुस्तक भी है पर पाठ करने का समय नहीं है। तिजोरी खोलने का समय है। यमराज का वारण्ट आयेगा तो तिजोरी रक्षा करेगी या गीता? उस समय गीता रक्षा करेगी।

भगवद्गीता किञ्चिद् अधीता, गंगाजललवकणिका पीता।

सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा क्रियते तस्य यमेन न चर्चा ॥

तीन बातें करने से यमराज पास नहीं आता। रोज नियम से थोड़ी-थोड़ी गीता पढ़ो। यम के पास जाना चाहते हो कि नहीं? नहीं जाना चाहते हो तो गीता पढ़ो। भयंकर समय में गीता सुनकर अर्जुन

निर्भीक हो गया था। अर्जुन ने कहा—‘नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा ।’ भगवान् को भूल गया था, गीता सुनकर उसका स्मरण ज्ञान हो गया। मोह को हटाने वाला कौन? गीता। ज्ञान को उत्पन्न करने वाली गीता। इससे संसार का सम्बन्ध छूट जाता है। संसार का पहला सम्बन्ध जन्म है। गीता के प्रभाव से जन्म छूट जाता है। ‘यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसार-बन्धनाद् विमुच्यते’। गीता बताई नित्य पढ़ने को। जैसे नित्य भोजन करते हो वैसे नित्य गीता का पाठ करो। भूख को भोजन हटाता है। नरक रूपी व्याधि को गीता का ज्ञान हटाता है। जो गीता को नहीं पढ़ते वे जहाँ जाना नहीं चाहते वहाँ भी जाना पड़ता है—नरकगामी होते हैं। ऐसी नरक-यातना से बचाने वाली गीता है। मरने वाले को थोड़ी गीता सुनाते हैं, समझते हैं कि उसी से उत्तम गति होगी। पुण्य के प्रभाव से जीव की ऊर्ध्व गति होती है। उत्तम गति प्राप्त करने को धर्म का अनुष्ठान न कर सके तो भी मरने वाला गीता श्रवण करता है। ऐसी वस्तु गीता भगवान् ने बनायी, जिसके स्मरणमात्र से जीव की उत्तम गति सम्भव है।

भगवान् के नाम में पाप दूर करने की जितनी शक्ति है, उतना पाप पापी मनुष्य नहीं कर सकता।

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापं नाशयितुं हरेः ।

तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥

घर की तरफ ख्याल तो नहीं? नाम की शक्ति सुनो—एक जंगल में मुसलमान लकड़ी काटने गया। जंगली रीछ आ गया। वह आदमी को मार देता है। थूक कर मनुष्य के नेत्र बन्द कर देता है। ऐसी अवस्था में रीछ ने पकड़ा, मारने लगा। मरते समय बोला ‘हराम को मारता है।’ यों अन्त में राम शब्द ‘हराम’ में आ गया। मरते ही यम के दूत आ गये। राम का नाम उच्चारण करने से पाप नष्ट हो गये थे। वह ‘राम’ नहीं ‘हराम’ कह रहा था पर भगवत्-नाम हर हालत में रक्षा करता है, चाहे जान कर लो चाहे बगैर जाने। मुसलमान को लेने यमदूत आये थे वे वापस चले गये, देवदूत आ गये। देवदूतों ने मुसलमान की रक्षा करी।

भगवान् के नाम की ऐसी शक्ति है। राम शब्द के उच्चारण से सारे पाप दूर हो गये। दुर्गति से हटकर सद्गति में ले जाने वाला राम नाम है। आप सब एक दिन जाओगे। पक्का निश्चय है, जाना है। कहाँ? ठिकाना कहाँ किया? संसार से जब जाओगे तो कहाँ ठिकाना किया? बम्बई भी जाते हो तो होटल में कमरा ठिकाना करते हो। परलोक में ठिकाना भगवान् का नाम कराता है। मरते समय भगवान् के नाम से ठिकाना वैकुण्ठ में हो जाता है। इस वास्ते भगवत्-नाम संसार में जीव का उद्धार करता है। भगवान् का नाम लेना सुकर है, जिससे ले सकते हैं वह जीभ अपने वश में है।

सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी।

तथापि नरकं यान्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥

एक दिन जाना जरूर है। रक्षा करने वाला कौन? भगवन्नाम। वह उच्चारण करो ताकि परलोक बन जाये। भगवत्-नाम सुकाला है, उसे लेने में पाई पैसा नहीं लगता। राम-राम कहना तो सीधा है। यहाँ से घर की तरफ जाओ तो राम-राम करते जा सकते हो। घर का रास्ता भी कटे, कल्याण का साधन भी हो। रास्ते में ही साँस निकलने लगी तो भी राम नाम लेने से अच्छा होगा। परलोक में उत्तम गति दिलाने वाला भगवत्-नाम है। जीभ कहीं से किराये पर लाओगे? तुम राम का नाम बोलोगे कि नहीं? शास्त्रों में कहा 'ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद् रघुनन्दनम्।' परमेश्वर का चिन्तन अपना पहला काम है। परमेश्वर का चिन्तन करने से चिन्तन करने वाले जीव का उद्धार हो जाता है।

बाबू कुर्सी पर बैठा, घरवाली से चाय माँगी, आँख बन्द कर मर गया। उससे कहा 'चाय लो' तो हाथ हिलाने से भी न उठा। ऐसा तो शरीर है क्षणभंगुर। भगवत्-नाम का स्मरण रखो, संसारी पदार्थ रक्षा करने वाले नहीं हैं। धन और जन उद्धार करने वाले नहीं। तिजोरी में पड़े बीस हजार रुपये उद्धार नहीं करेंगे, न परिवार वाले जन उद्धार करेंगे। भगवत्-नाम ही यमराज से रक्षा करेगा। यहाँ से उठते ही भगवत्-नाम स्मरण करो। नामोच्चारण करते रहो यही आशीर्वाद है।

८४ ► आचार्य शंकर का जीवन

शास्त्र की आज्ञा है 'सत्यं वद नानृतम्'। सारे मनुष्य सच बोलें। मनुष्य ही धर्म का अधिकारी है। झूठ मत बोलो ऐसा कहता है वेद। वेद भगवान् की वाणी है 'सत्यं वद नानृतम्' यह वेद-वाक्य है। कचहरी-कोर्ट वाले इसका अनुसरण करते हैं? वकीलों से पूछो। वकील स्वयं झूठ बोलता है। दूसरे से भी झूठ बुलवाता है। लेकिन वेद कहता है, 'तू सत्य बोलेगा तो सारा मामला सुधर जायेगा।' अनृतं अर्थात् झूठ न बोले। सत्य भाषण कल्याण का साधन है। अकल्याण का साधन झूठ है। स्वर्गकामी सत्य बोले। युधिष्ठिर को लेने स्वयं इन्द्र रथ लेकर आया कि 'स्वर्ग चलो'। सोचो, दुर्योधन मर गया तो किधर गया। असत्य बोलने से अधर्म होता है। 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्'। नारकीय गति में ले जाने वाला है असत्य भाषण। हमेशा सत्य भाषण करो। 'सत्यमेव जयते नानृतम्'। सत्य भाषण से सद्गति, असद् भाषण से दुर्गति होती है। वाणी की क्रिया दोनों हैं, सत्य और असत्य। क्या दुर्गति में जाना चाहते हो? असत्य भाषण करते हो कि नहीं? असत्य भाषण ही दुर्गति में ले जाता है। जाना चाहते हो सद्गति में, करते हो असत्य भाषण!

धनादि पदार्थों को लेकर असत् व्यवहार न करे। धनादि मिलेंगे भाग्य से। 'भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्।' धन प्रारब्ध से मिलेगा। भाग्य में नहीं तो प्रयत्न करके भी नहीं मिलेगा। भगवत्-प्राप्ति पुरुषार्थ से होगी। भगवान् की प्राप्ति प्रारब्ध का फल नहीं है, पुरुषार्थ का फल है। मीरा ने पुरुषार्थ किया तो भगवत्-दर्शन हुये। संसारी पदार्थ मिलते हैं भाग्य से। किसी से कहें 'प्रातःकाल भजन करो' तो कहता है 'भाग्य में नहीं है।' भजन भाग्य में नहीं लिखा—कहने वाला गलत बोलता है। 'ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय' प्रातः ४ बजे से ६ बजे तक 'चिन्तयेद् रघुनन्दनम्' परमेश्वर का चिन्तन करे। उस समय सोना नहीं चाहिये। भजन के समय निद्रा लेने वाला दो टाँगों वाला मनुष्य मरकर 'हाबू' अर्थात् छह टाँगों वाला जानवर बनेगा। चार बजे सोने वाला हाबू बनता है। वेद की आज्ञा का उल्लंघन मत करो। 'ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा

पुण्यक्षयकारिणी' प्रातः चार बजे सोने वाला पहले करी हुई पुण्य की कमाई भी खोता है। मानव जीवन कल्याण का साधन है, इसमें आलस्य प्रमाद करेगा तो दानव बनेगा। मानव से देव बनो, दानव नहीं। चार बजे उठो। स्नान करके भगवान् का भजन करो। देव बन जाओगे। सावधानी से समय का सदुपयोग करो। आँख खुलने का उपाय भी बता देते हैं। काली मिर्च कूट कर रखो, थोड़ी आँखों में डालो तो फिर निद्रा नहीं आयेगी। काली मिर्च हम दे देंगे पिसी पिसाई। ले तो जाओगे पर लगायेगा कौन ? घर वाली से कह देना, वह लगा देगी। घर वाली भी सोने वाली है तो नौकर रखो चार बजे उठाने को। प्रातः काल चार बजे उठने की सावधानी रखो। 'प्रमादोऽनवधानता'। जीव मानव शरीर में ही कल्याण प्राप्त कर सकता है। ऐसा नहीं करना कि आलस में आठ बजे तक सोते ही रहो। बनाओगे कि अपना कार्य बिगाड़ोगे, बताओ? कहाँ सुख मिलेगा? जाना जरूर है, रहना नहीं है। समय को सावधानी से बचाओ। प्रातःकाल का समय कीमती है। उसमें भजन करो।

भक्ति

स्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज

परब्रह्म परमात्मा को गुणातीत देखनारूप अपरोक्ष साक्षात्कार वेदान्तश्रवण से जन्य है। उसी परमात्मा को गुणमय देखना भक्ति है। साधक दो प्रकार के होते हैं (१) भावना-प्रधान (२) विचार या विवेकप्रधान। विचारक पहले जिसे विचार लेता है तब उसके साथ प्रेम कर पाता है। भावप्रधान पहले श्रद्धा से प्रेम करते हैं, विरह से तड़पते हैं; पता चलता है कि प्रियतम से एकता ज्ञान से होगी तो ज्ञान कर फिर उसे पाते हैं। परमेश्वर के गुणों को सुनने मात्र से उनके प्रति अत्यधिक प्रेम का प्रादुर्भाव भावुक भक्त में होता है। अतः इसके लिए गुणों की प्रधानता है। 'उपासनाश्रितो धर्मः कार्ये ब्रह्मणि वर्तते।'।

वस्तुतः ब्रह्म कार्य बनता तो नहीं पर गुणों को सत्य मान कर प्रवृत्त होने वाला उसे कार्यरूप में स्थित समझता है। इसीलिये अपने गुणों से अपनी ओर आकृष्ट करने वाले होने से भगवान् को कृष्ण कहा गया। अप्रत्यक्ष गुणों का भी आकर्षण होता है। संयुक्ता ने पृथ्वीराज को देखा नहीं था, उसने गुण सुनकर ही वरण किया। इसी से भारत का गुलामी का इतिहास शुरू हुआ। पृथ्वीराज जब संयुक्ता को लाया तब मार्ग में अनेक वीर समाप्त हुए अतः गोरी के आक्रमण सफल हो गये। रुक्मिणी ने श्री कृष्ण को देखा नहीं था। भावना-प्रधान व्यक्ति सभी वरणीय गुण वहाँ पा लेता है जहाँ उसका प्रेम टिकता है। आज-कल क्षण-क्षण में वरण बदलते हैं। पहले अनुष्ठान लेता था पंडित तो वरण की रक्षा उसे

बाँध दी जाती थी। वह पंडित यजमान के रक्षा बाँधता था। अनुष्ठानपूर्ति तक पण्डित बाँधा रहता था। वह वरण नहीं कहलाता जिसमें स्थिरता न हो। जिसे चुन लिया उसके प्रति अपने आपको समर्पित करने में भक्त गौरव का अनुभव करता है। हमारा मन चंचल है। इसमें हमारी क्या खराबी! भगवती से प्रार्थना करते हैं—

प्रभूता भक्तिस्ते यदपि न ममालोलमनसः।

त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽहमधुना ॥

जब स्त्री पुरुष का वरण करती है, तब उसमें लौल्य नहीं रहता, स्थिरता होती है। मेरे अन्दर जो-जो अवगुण हैं वे ही देवी में हों तो उनका वरण ही क्यों करता! उनका मन चंचल नहीं है, वे सत्यकाम, सत्यसंकल्प हैं। उनसे प्रार्थना है—तुम मेरी तरफ दया वाली दृष्टि बनाये ही रखो। ‘पयोदः पानीयं विशति मधुरं चातकमुखे’ बादल मीठा पानी चातक के ऊपर इतनी जोर से बरसाता है कि वह अपना मुख ऊपर को कर लेता है। भक्त वरण कर ले तब परमेश्वर ही सारी व्यवस्था बना देते हैं ताकि भक्त को इष्टलाभ हो। उपास्य गुणों का समुदाय जहाँ है उसमें मन का स्थिर होना ही भक्ति है। उस पर मन स्थिर होने से वे ही गुण हमारे अन्दर आने लगेंगे। परमात्मा का चिन्तन करोगे तो उन्हीं के गुण प्रकट होने लगेंगे। यह नहीं हो सकता कि तुम परमात्मा को सर्वभूतात्मभूतात्मा मानो, फिर उसे परिच्छिन्न देश काल वाला मान लो। जिसका चिन्तन करोगे उसी के गुण तुम्हारे अन्दर प्रकट होने लगेंगे। ‘अन्वेष्टव्यात्मविज्ञानात् प्राक्’—अन्वेषण के पहले गुणों को आधार बना कर बाहर ढूँढना पड़ता है। स्वरूपलक्षण को अन्दर ढूँढना पड़ता है। अन्दर ढूँढो तो प्रमाता जीव ही ब्रह्म निकलेगा। तटस्थ लक्षण जैसे ‘तज्जलानिति’ से ढूँढने चले; सृष्टि स्थिति संहार करने वाला जिसे बाहर समझे बैठे थे, अंत में पता चलता है कि उसके साथ ही हैं! वही हमारा भीतरी सत्य है।

पाप आदि मेरे अन्दर थे ही नहीं—यह जाना तो उस वास्तविक स्वरूप के ज्ञान पर पहुँचे। प्रेम में बीच का पर्दा रहता नहीं। पहले-पहल पहचान वाले को बैठक में मिलते हो, कई बार आने पर उसे भोजनालय

में लाते हो और दोस्ती होने पर वह कमरे में ही आ जाता है। पर्दा हटाते ही प्रसन्नता होती है। प्रेम बढ़ नहीं रहा जहाँ पति-पत्नी में दूरी कायम है। दूसरे को अपने अल्मारी की चाबी नहीं देते। प्रेम आगे बढ़े तो पर्दा टूटे। जब जीव परमेश्वर की तरफ बढ़ता है तो श्रुति का दृष्टान्त साहित्यिक है 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्'। जब परमात्मा और जीव ने एक-दूसरे का वरण कर लिया तब वह अपने समग्र शरीर को खोल कर रख देता है। उपासना के प्रारम्भ में द्वैत है लेकिन समाप्ति में समझ आता है कि भेदक प्रत्यय अविद्या सच्ची नहीं है।

व्यावहारिक जगत् में शरीर-मन का भेद, अलगाव सत्य है। पर घड़े के अन्दर के आकाश का घड़े के बाहर के आकाश से भेद कल्पित है। घड़े के जर्ने-जर्ने में भी आकाश ही है। इसीलिये पानी भरो तो थोड़ी देर में बाहर आने लगता है। यदि आकाश न होता तो पानी भीतर से बाहर निकलता कैसे? भेदक अविद्या का बाध कर दिया तो अभेद रह गया। यही परमात्मा के स्वकीय शरीर का अनावरण है।

एक ऐसा आनन्द होता है जहाँ अभेद को जानते हुये भेद रखा जाता है। चालीस साल ब्याह किये हो गये। पति का चेहरा पत्नी अच्छी तरह देख चुकी। फिर भी लोगों के बीच बैठी है तो पति को घूँघट से एक आँख के कोने से बीच-बीच में देखती है। ऐसे ही घट-पटादि आकारों के बीच-बीच में परमात्मा बैठा है तो बाधितानुवृत्ति से ज्ञानी उसका दर्शन करता रहता है। घट का बीच-बीच में बाध करके भी देखने का एक रस है। ज्ञान एक ही बार होता है। ज्ञान की आवृत्ति नहीं होती। लेकिन बार-बार क्यों दर्शन करता है? उसके अन्दर एक रसानुभूति होती है, इसलिये।

भोजन का आनन्द कितना ज्यादा? जितनी ज्यादा भूख। राजा ने भूखी दशा में किसी के घर मक्के की रोटी खाई तो बेहद अच्छी लगी। उसे रसोइया बना दिया, कहा 'वही रोटी खिला,' पर अब अच्छी नहीं लगी! मंत्री ने कहा 'तुम तीन दिन भूखे रहो तभी अच्छी लगेगी।' शास्त्र

कहता है कि तत्त्ववेत्ता आधे निमेष का भी समय नहीं जाने देता जब ब्रह्ममयी वृत्ति न हो, 'निमेषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना।' गोपिकायें ब्रह्मा जी को गाली देती थीं कि पलकें झपकने वाली क्यों बनायी जिससे हम निर्निमेष दृष्टि से कृष्ण को देख न सकें!

वही गोपिकायें एक सौ चौदह साल वियोग सहती रहीं। भगवान् ने ग्यारह वर्ष की आयु में वृन्दावन छोड़ा, फिर कभी वहाँ गये नहीं। इतना होने पर भी 'पदमेकं न गच्छति' एक पैर भी भगवान् का वृन्दावन से बाहर नहीं गया! तात्पर्य है कि तत्त्वबोध होने पर निमेषभर भी ब्रह्माकार वृत्ति के बगैर नहीं रहा जाता। शुकवामदेवादि की यही स्वाभाविक स्थिति है। कृतोपास्ति को जब ज्ञान हो गया तब यह भाव रहता है, जो अकृतोपास्ति है, विवेकमात्र से प्रवृत्त हुआ उसके लिये कहा 'आत्मेत्येवोपासीत' अज को जो सीधे ही नहीं पकड़ सके, वह 'तज्जलानिति शान्तउपासीत' यह वेद ने कहा।

जिसने विरह सहन कर लिया, उसे इष्ट मिला तो फिर लिपट कर छूटेगा नहीं। अनात्मा की प्राप्ति होने पर बाधितानुवृत्ति आदि उपासना करेगा। अनात्म व्यवहार में अधिक जाने की उसमें प्रवृत्ति सम्भव नहीं। अमानित्वादि से गीता में कहे साधन जिसके अन्दर प्रतिष्ठित हैं, अद्वेष्टादि से कहे धर्मों को जो लगातार काम में ला रहा है, उस जीव का शिव से भेद नहीं।

भक्ति और वेदान्त दोनों मार्ग हैं, दोनों ही साधन बन जाते हैं। अतः भगवान् ने ज्ञानी को भक्त कह दिया 'चतुर्विधा भजन्ते' में, एवम् भक्त के लक्षण गिनाये तो ज्ञानी के सब लक्षण कह दिये। भक्ति से प्रसन्न हुआ परमेश्वर अविद्या के आवरण को तोड़कर अभेद प्रकट कर देता है।

वेदान्त विज्ञान

स्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज

प्रातः काल बताया कि परब्रह्म परमात्मा को जब भावना से देखते हैं तब उसका साक्षात्कार होता है। सविशेष ब्रह्म का साक्षात्कार भी है ब्रह्म का ही अनुभव। भावना, प्रेम, के बगैर उस सविशेष ब्रह्म का साक्षात्कार होता नहीं। प्रेम किया नहीं जा सकता। जिसके हृदय में प्रेम की ज्योति नहीं है, वहाँ प्रेम की ज्वाला पैदा कर ही नहीं सकते। रूप देखना आँख वालों को सरल है, पर अन्धे को असम्भव है! उसे रूप नहीं समझा सकते। एक सेठ ने ब्रह्मभोज किया। खीर-पूड़ी-साग बनाये। खराब दूध आ गया तो खीर खट्टी बनी। ब्राह्मणों ने क्या खानी थी खट्टी खीर! बाहर दुःखी होकर निकले पूड़ी साग खाकर। सेठ की बदनामी कर दी, 'खट्टी खीर वाला सेठ' उसका नाम ही पड़ गया। संन्यासी सम्मान को शराब का नशा मानता है, अपमान मिले तो खुश होता है। जिसे तुम प्रिय समझते हो, उन भोगों को प्राप्त होते देखकर भी उसे वमन की तरह वितृष्णा होती है। समग्र संसार के भोग उसे वमनाहारवत् लगते हैं। उसको शरीर संधारण के लिये दो चार टुकड़े खाने पड़ते हैं। वे भी खाने में शरम लगती है संन्यासी को। किन्तु गृहस्थ के लिए अपयश मरण-सा दुःख है। सेठ का अपयश फैला तो उसे धोने को ब्राह्मणों की पंचायत में उपाय पूछा। निर्णय हुआ कि साठ गाँवों के ब्राह्मणों का ब्रह्मभोज करे तो ब्राह्मण उसे ऐसा कहना छोड़ देंगे।

एक अन्धा ब्राह्मण था। वह उस दूसरे भोज में देरी से पहुँच रहा

आचार्य शंकर का जीवन « ९१

था, तब तक लोग वापिस आ रहे थे। सब ने कहा कि भोजन पूरा हो चुका अब जाना व्यर्थ है। उसने पूछा 'क्या बना था?' बताया कि खीर थी। पूछा 'खीर कैसी होती है?' कहा 'सफेद दूध जैसी।' अंधे ने पूछा 'सफेद क्या होता है?' जवाब दिया 'जैसे बगुले का पंख।' 'बगुला कैसा?' एक ब्राह्मण ने हाथ खड़ा करके हथेली झुकाकर दिखाया कि ऐसा! अन्धे ने छूकर हाथ को टटोला, टेढ़ा-मेढ़ा समझ आया तो बोला—'यह तो गई बीती चीज थी। गले में अटक जाती!' जैसे अन्धे के लिये रूप का कोई महत्त्व नहीं ऐसे जिसके हृदय में प्रेम है ही नहीं, उसकी भक्तिरूप वृत्ति कैसे बनाओगे? सच्ची बात है कि अधिकतर लोग वर्तमान युग में प्रेम-शून्य हैं! माता से प्रेम नहीं, जिसका स्तन पिया उससे प्रेम नहीं; सहोदर भ्राता से प्रेम नहीं; उन्हें परमात्मा का प्रेम कैसे समझायें? ऐसे व्यक्ति को प्रेम सिखाना असम्भव है।

आज का युग है तर्कप्रधान। वेदान्त का निर्गुण ऐसा है कि जिसकी शास्त्र में प्रवृत्ति नहीं, वह भी तर्क से ब्रह्मतत्त्व समझने में प्रवृत्त हो सकता है। धर्म-उपासना दोनों में शास्त्र के अलावा गति नहीं। शालिग्राम में ही विष्णु की पूजा क्यों, गणेश की पूजा सुपारी पर मौली बाँधकर क्यों आदि में तर्क नहीं चलेगा। वेदान्त का निर्गुण तत्त्व तर्क से भी ग्रहण में आयेगा। युक्ति, अनुभव भी इस में लगते हैं। आज वेदान्त सिंह की तरह गरज सकता है। युक्ति वेदान्त में अनुभव के आधार पर चलती है। विचार प्रारंभ होता है 'मैं कौन?' से। ब्रह्म को बाद में जानूँगा, पहले यह जान लूँ कि मैं कौन हूँ? जानने निकला तो समझ आया 'अहमस्मि सदा भामि नाहमस्मि कदाप्रियः' कोई काल ऐसा नहीं जब 'अहं न अस्मि' ऐसा भान हो। गाय चराने वाला भी 'मैं हूँ' यही जानता है। पानी भरने वालियों को, ग्वालों को भी पता लगेगा 'मैं हूँ।' यह सिखाने की ज़रूरत नहीं। मैं अभी जाग्रत् में हूँ। मैंने ही स्वप्न देखा था। 'स्वप्न था नहीं' यह मैंने जगने पर जाना। देह प्राण आदि आने जाने वाली चीजें बहुत हैं। स्वप्न में, सुषुप्ति में रहता हूँ जबकि शरीरादि नहीं रहते।

प्राण को भी स्वरूप नहीं समझ सकते। पेट भर के सो जाओ, स्वप्न में खिचड़ी माँगते हो। इन्द्रियों को भी आत्मरूप नहीं कहना बनता। सपने में भी साफ दिखाई देता है, उठकर देखो तो चश्मा टूटा ही है! पैर में चोट होने से घूमने जाना बन्द है, पर स्वप्न में आराम से घूम-फिर आते हो! मैं तो वहाँ भी था, इन्द्रियाँ नहीं थीं। अतः वे मैं का स्वरूप नहीं हो सकतीं। बुद्धि भी बदल जाती है, मैं नहीं बदलता। पहले प्रसन्न होता था रसगुल्ले खाकर, अब रसमलाई के सामने रसगुल्ला फीका लगने लगा, मैं वही हूँ। अनात्मवादी बौद्ध का सत्संग मिला तो सुना कि मैं हूँ ही नहीं, शून्य ही है। ‘भ्रान्ता भृशं वादिनः’। पर अनात्मवाद को भी जो समझ रहा है, वह मैं जैसा का तैसा बना रहता है। कभी ऐसा नहीं कि मैं हूँ और मुझे इसका पता नहीं। कभी डाक्टर से नाडी दिखा कर नहीं पूछते ‘डाक्टर मैं हूँ या नहीं?’ ‘मैं हूँ’ का भान सदा रहता है। ‘नाहमस्मि कदाप्रियः’। मैं अप्रिय कभी नहीं होता। शरीर कभी अप्रिय हो भी जाता है। रोगादि से दुःखी होकर शरीर को भी छोड़ना चाहते हो, मानते हो ‘मैं सुखी हो जाऊँ इस शरीर को छोड़कर।’

मैं सदा ज्ञानरूप हूँ एवं कोई काल ऐसा नहीं, जब मुझे अपने आप से आनन्द नहीं आता। सूर्य को प्रातः नमस्कार करने वाले सूर्योपासक से भी ज्येष्ठ की दुपहरी में धूप में जाने को कहें तो उसे सूर्य अप्रिय लगता है। वेद भी कहता है ‘न वै देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति’। देवताओं से भी प्रेम (भक्ति) आत्मा के लिये, अपने लिये ही होता है।

‘तत्सुखसुखिता’ के अन्दर भी आत्मप्रेम रहता ही है। अहेतुक प्रेम में भी आत्मसुख होगा ही, वहाँ शरीरादि-निमित्तक सुख नहीं यह तो ठीक है पर आत्मसुख रहता ही है। जिस ब्रह्म के बारे में शास्त्र बताता है उसका स्वरूप कहा ‘सच्चिदानन्दलक्षणम् विज्ञानमानन्दं ब्रह्म’ यह उसका स्वरूप लक्षण है। यह जब ‘मैं’ में घट गया तो ‘ब्रह्मैवाहमतः सिद्धं सच्चिदानन्दलक्षणम्’ मैं ब्रह्म ही हूँ यह निश्चय हो जाता है। इसीलिये

कहा है 'एकं वेदान्तविज्ञानं स्वानुभूत्या विराजते' यह तुम्हारा अपना अनुभव है। इसीलिये बड़ी सरल बात है। फिर कठिनाई क्या? 'श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः' यह सुनने को ही नहीं मिलता। संसार में ५ अरब आबादी है। तुम लोग ५६ करोड़ भारतीय हो। भारत के बाहर कहीं सुनने को मिलेगा यह वेदान्त विज्ञान? वेद ने इस देश का इस ज्ञान की दृष्टि से ही 'भारत' नाम रखा। 'उत्तिष्ठध्वं जाग्रध्वम् अग्निमिच्छध्वं भारताः'। भा मायने प्रकाश। प्रकाशरूप अग्नि चाहिये, धुआँ नहीं! वासनाओं का धुआँ निकल जाये फिर जो ज्ञान की दीप्ति है वह इस देश की मुख्य विशेषता है। कर्म में रत रहते-रहते, आहुति देते-देते कर्मजडों के घरों की केवल दीवालें ही काली नहीं हुई, दिमाग भी काले हो गये। कर्मकाण्डी हिसाब लगाता है कि यज्ञ में इतना घी खर्च होगा तो उसी में कमी कर देता है। शिव के अभिषेक में गऊ के दूध की धारा अटकती नहीं, भैंस के दूध की धारा अटकती है। गऊ के शुद्ध दूध की धारा ज्ञान उत्पन्न करेगी। कर्मजड सोचता है कि भगवान् को क्या पता कितना दूध कितना पानी है। अतः भैंस के दूध में पानी मिलाकर अभिषेक कर लेता है।

भक्ति का संबंध न होने से कर्म ही वासना से अन्तःकरण में कालिख लाये। ज्ञानाग्नि निर्वासन मन में पैदा होगी। जो ज्ञान के उपयुक्त समझा गया, वही श्रवण का प्रयास भी करेगा। ५६ करोड़ हिंदुस्तानियों में कई मुसलमान निकलेंगे, कई ईसाई, केवल मुट्ठीभर ही वेदान्त ज्ञान प्राप्त करना चाहेंगे, अतः श्रुति में कहा कि बहुत-सों को सुनने को ही नहीं मिलेगा 'शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।' सुनते हुए भी अधिकतर उसे समझ नहीं पायेंगे। मुमुक्षु के हृदय की इच्छा है बन्धन-निवृत्ति की। ज्ञानाग्नि विनाशक होने से वह तो इसके उद्भव से डरता नहीं, जिसे पूर्ण वैराग्य नहीं, तीव्र मुमुक्षा नहीं वह आपात ज्ञान से ही विचलित हो जाता है।

दधीचि के पुत्र पिप्पलाद थे। उनके मन में देवताओं से घृणा हो गयी थी क्योंकि उनके पिता को देवताओं ने अपने स्वार्थ से मारा था।

देवताओं को मारने की सामर्थ्य पाने के लिये पिप्पलाद ने रुद्र की तपस्या की। तप से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। पिप्पलाद ने भगवद्दर्शन न होने पर उनसे उनकी संहारक शक्ति माँगी। भगवान् ने कहा यह जिद छोड़ दे, रुद्र शक्ति का प्रवेश नहीं हो सकता तुझमें। पिप्पलाद माना नहीं क्योंकि देवता-संहार उस सामर्थ्य के बिना संभव था नहीं। अंत में भगवान् ने उसे शक्ति देना शुरू किया तो उसकी आँखें जलने लगीं! घबराकर बोला 'आप क्या शक्ति दे रहे हैं? इससे तो मेरा ही संहार होने लगा!' भगवान् ने समझाया 'समष्टि आँखों के समष्टि अभिमानी देवता का नाश होगा तो तेरी व्यष्टि आँखें कैसे बचेंगी?' उसने पूछा 'आप सबको कैसे नष्ट करते हैं?' भगवान् ने बताया कि उपाधि-तादात्म्य है ही नहीं इसीलिए उपाधि के विकार से ईश्वर में अंतर आना संभव नहीं। जब तक तादात्म्याध्यास दृढ़ है तब तक यदि सारे जगत् का बाध करते हो तो चिल्लाने लगते हो 'हमारे शरीर का, मन का, हमारे बच्चों का क्या होगा?' सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न करने वाले होकर भी परिच्छिन्न में अभिमान के चलते घबरा रहे हो अतः संन्यास आवश्यक है। यहाँ 'संन्यास' केवल आश्रम ग्रहण नहीं वरन् सब तादात्म्य छोड़नारूप संन्यास चाहिये। संन्यास-अनिवार्यता बताती भाष्य पंक्तियों को कभी संशय से देखा, अतिशयोक्ति समझा, लेकिन शनैः शनैः प्रतिदिन अनुभव करते हैं कि शत प्रतिशत सत्य कहते हैं भाष्यकार। अश्रद्धा समाप्त हो गई। देहन्यासो हि संन्यासःशरीर को शव की तरह देखो। मुर्दे को लात मारने से जैसे विक्रिया नहीं होती, ऐसे देह में क्रिया से स्वयं में कोई विकार नहीं हो, तब कदम आगे बढ़ेगा।

तर्क वालों का प्रधान रोग है कि वे अपनी कामनाओं के अनुरूप निर्णय तक पहुँचने के लिये स्वभाव से ही कुतर्क करने लगते हैं! कभी-कभी तो वे समझ ही नहीं पाते कि वे कुतर्क के जाल में घुस रहे हैं। अतः आचार्य ने कहा 'दुस्तर्कात् सुविरम्यतां' दुस्तर्क को सर्वथा छोड़ो, श्रुतिमत का ही विचार करो। हम बाहर-बाहर से मोक्ष की इच्छा

करते हैं, अन्दर से नहीं इसीलिये साधन कर नहीं पाते। जहाँ कहीं इन्द्रियों से व्यवहार करो, 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' का प्रवाह चलाते रहो तब वेदान्त का ज्ञान होगा।

वैराग्य के अभाव में यह प्रयास स्थिर नहीं होता। वेदान्त स्वानुभूतिरूप होने पर देदीप्यमान होता है, यह चमक लाने के लिये ब्रह्मनिष्ठा आवश्यक है।

ब्रह्मतत्त्व

श्रीस्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज

‘यत् साक्षात् अपरोक्षाद् ब्रह्म’ परमात्मा साक्षात् अपरोक्ष है। जो बिना इन्द्रियों के दीखे, बिना कान के सुनने में आवे वह साक्षात् अपरोक्ष कहलाता है। घड़े का प्रत्यक्ष नेत्र द्वारा होता है लेकिन ब्रह्म का साक्षात्कार बगैर इन्द्रियों के होता है। किन्तु उसे समझेगा कौन? अधिकारी। परब्रह्म परमात्मा का सर्वत्र भान होता है। उसके भान हुये बिना जगत् का भान होता नहीं। काला-पीला का ज्ञान नेत्र से, खट्टे-मीठे का जिह्वा से, ठंडे-गरम का त्वचा से, ऐसे ही यहाँ परब्रह्म का ज्ञान किससे होगा? पर ब्रह्म का ज्ञान इन्द्रियों से नहीं होता। संसार के विषयों का ज्ञान कराने वाली इन्द्रियों से यदि ब्रह्म का ज्ञान होता तो वह संसारी पदार्थों की तरह खत्म होने वाला हो जाता। जबकि ‘सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म’। वेद कहता है कि परमेश्वर सदा रहता है। देश काल बदलता है, परमेश्वर नहीं बदलता। वस्तु भी बदल जाती है। बच्चा जन्मा तो छोटा होता है। फिर बड़ा हो जाता है। नहीं बदलने वाला कौन? यह मनुष्य की बुद्धि नहीं बता पाती, उसे तो वेद ही बतलाता है। सदा एकरूप से रहने वाला परमेश्वर है। वह कभी बदलता नहीं। कहो, कैसे जानें?

परमेश्वर का ‘सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म’ यह स्वरूप वेद ने कहा। ब्रह्म सत्य-स्वरूप, ज्ञान-स्वरूप तथा अनन्त है। तुम्हें संसार के पदार्थों का ज्ञान होता है। पचास प्रकार के कपड़ों का भेद-ज्ञान हुआ। भेद कपड़े में है कि ज्ञान में? कपड़े में। कपड़ा तो कोई सफेद है कोई हरा, पर ज्ञान

में भेद नहीं। हरे का ज्ञान हो या पीले का, ज्ञान एकरूप रहता है।

ज्ञानमेकं सदा भाति सर्वावस्थासु निर्मलम् ।

मन्दभाग्या न जानन्ति स्वरूपं केवलं बृहत् ॥

‘एकं ज्ञानं सदा भाति’। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति सभी अवस्थाओं में होने वाला ज्ञान एक है। जानने वाले का स्वरूप है ज्ञान। चाहे मनुष्य हो चाहे पशु चाहे देवता, सबका स्वरूप ज्ञान ही है। मन्दभाग्य वाला कौन? काँच के टुकड़ों में दस हजार का नग पड़ा है पर वह उठाता नहीं क्योंकि उसे जानता नहीं, नग की पहिचान नहीं है। न पहचानने से ग्रहण नहीं होता। ग्रहण न होने से लाभ नहीं। हीरे के नग जैसे परमेश्वर का सदा भान होता है पर मन्दभागी उसे समझता नहीं अतः ग्रहण नहीं करता। उसका भान हुए बिना, परमात्मा का भान हुए बिना, संसार के विषयों का भान होगा नहीं।

नेत्र मूँदने पर अँधेरा दीखता है। अँधेरा दिखाने वाला कौन? ज्ञान-स्वरूप परमात्मा। पचास प्रकार की मिठाई में खाँड का ज्ञान मिठासरूप से। जैसे सारी मिठाइयों में खाँड का ज्ञान मिठासरूप से, ऐसे सारे पदार्थों में परमात्मा ज्ञानरूप से भासमान है। ज्ञान के बगैर कोई पदार्थ नहीं दीखेगा। हर हालत में परमात्मा का दर्शन होता है। कोई ऐसा समय नहीं जब परमात्मा न दीखे। जब गाढ निद्रा आती है तो ऐसी कि कुछ पता नहीं रहा। लेकिन कुछ पता नहीं रहा इस बात का तो पता था! कुछ पता नहीं रहा इसको जान के कहते हो कि बगैर जाने? गाढ निद्रा का भी पता ज्ञान कराने वाला वह परमात्मा है कि तुम? तुमको ज्ञान हुआ, ज्ञान वाले तुम हो। मैं हूँ यह तुमको ज्ञान किसी इन्द्रिय से होता है? नेत्र मूँदने पर भी कह सकते हो ‘मैं हूँ’। ‘मैं हूँ’ यह भी तो ज्ञान है। यह ज्ञान किससे हुआ? यह समझोगे तभी काम बनेगा। ‘मैं हूँ’ यह ज्ञान किससे? मैं-वस्तु इन्द्रियगम्य नहीं है। मैं शरीर, मन, इन्द्रियाँ नहीं हूँ क्योंकि मेरी इन्द्रियाँ, मेरा शरीर, मेरा मन यों इनसे अलग भासता हूँ। मैं चेतन हूँ। तुम्हारा स्वरूप चेतन है। यह निश्चय होने से ही आवागमन छूटेगा।

द्वारका में कृष्ण के साथ रहने नारद गये। महल मिल गया रहने को। सोचा हमेशा महल बना रहता तो बढ़िया था। कहा 'आपके पास बहुत बार स्वांग बना कर आया, मैं बहुरूपिया के रूप में रहा। राजा प्रसन्न हो जाये तो ईनाम देता है। अप्रसन्न होता है तो दण्ड देता है।' नारद ने कहा—'आनीता नटवद् मया तव पुरा श्रीकृष्ण या भूमिकाः' चौरासी लाख बार स्वांग बनाकर आया। अगर खुश नहीं हुए तो कह दो 'आज से पीछे स्वांग बनाकर आना नहीं।' और अगर प्रसन्न हो गये तो अब इससे विश्रान्ति दो।' दोनों प्रकार से मुक्ति माँग ली। यदि प्रसन्न हो तो वरदान दो। अप्रसन्न हो तो कह दो 'अब स्वांग बना कर आना नहीं।' यह भी मुक्ति ही है। भगवान् को अन्त में कहना पड़ा 'नारद, जैसी तेरी इच्छा।'।

जगत् भगवान् के अधीन। भगवान् किसके अधीन? कृपा के। कृपा दीनता के अधीन। दीन पर कृपा होती है। दीन कहता है 'अब मेरे ऊपर कृपा करो।' भगवान् कृपा दीन पर करते हैं। अतः उनका नाम दीनानाथ है। दीन किसे कहते हैं? जो निश्चय करे 'नाथ! तवाहम्' हे नाथ! मैं आपका हूँ। विभीषण भगवान् के पास आया। साष्टाङ्ग नमस्कार किया। २ पैर, २ घुटने, छाती, सर, २ हाथ—ये आठ अंग हैं। स्त्री बैठके नमस्कार करे, पृथ्वी पर लेट के नहीं। श्रीराम ने 'आओ लंकेश' कहा विभीषण से।

रावण अभी बैठा था इसे कैसे लंकेश बना दिया ? सुग्रीव ने कहा 'रावण यदि सीता को लेकर आ जाये, आपके चरण पकड़े तो यह लंकेश कैसे रहेगा?' भगवान् ने कहा 'लंकेश यही रहेगा, उसे अवधेश बना देंगे।' पूछा 'तुम कहाँ जाओगे?' भगवान् ने कहा हम वन में ही रहकर तपस्या करेंगे।

दीनबन्धु दयालु भगवान् की शरण लेकर अपना कल्याण मानव शरीर में ही होगा। भगवत्-शरणागति लोगे कि बाजार की शरणागति? कई जन्मों में बाजार देख लिया। अब भगवान् को देख लो। संसार का ख्याल बहुत करा, भगवान् की तरफ ख्याल करने से क्या हो जाता है?

कल्याण हो जाता है। ख्याल कैसे करे। बतावें? तिजोरी में दस हज़ार के नोट पड़े हैं; उसका ख्याल होता है या नहीं। वे नोट शरीर छूटा तो साथ जायेंगे? उन्हीं के पीछे चोर का भय है, डाकू का भय है। ऐसे धन को भी छोड़कर जाना पड़ता है। नहीं जाना चाहते? तो उपाय है 'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।'।

जब जन्म नहीं तो मरण भी नहीं होगा। जन्म-मरण से तुम्हारा छुटकारा हो, यह आशीर्वाद है।

भजन

श्रीस्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज

पहले मनीराम की तरफ देखो, किधर जा रहा है? घर की तरफ तो नहीं गया कि घर चलें घर चलें?

संसार में भोजन प्रसिद्ध है, शास्त्र में भजन। भोजन के लिये उपदेश देने की ज़रूरत नहीं, अपने आप प्रवृत्त हो जाते हो। ऐसे भजन के लिये भी लालायित होना चाहिये। भोजन सारे प्राणी करते हैं, ब्रह्मा से लेकर चीटी तक, पर भजन सारे शरीरों में नहीं, केवल मानव शरीर में ही होता है। पशु-पक्षी क्या भजन करेंगे? चिड़ी भी, कीड़ी भी खांड-मिट्टी से खांड को पकड़ती है। भोजन करने में वह उस्ताद है, पर भजन परमेश्वर का केवल मानव शरीर में ही होता है। ‘भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्’, भोजन के लिये शास्त्र कोई उपदेश नहीं देता। भोजन स्वभाव से प्राप्त है। शास्त्र कहता है—भगवत्-भजन (सेवन) करो। सेवन जानते हो? बढ़िया मीठी लस्सी बनी हो तो उसका सेवन कैसे होगा? कान से या नाक से नहीं, मुँह लगाने से होगा। ऐसे भगवान् का भजन (सेवन) मन लगाने से होगा। भगवान् का सेवन मन से होगा। मन पक्षी, कीट के शरीर में भी है। पर भजन नहीं कर सकता भगवान् का। मानव ही कर सकता है। लस्सी से प्यास मिटती है, भजन से क्या होगा?

रे चित्त! चिन्तय चिरं चरणं मुरारे:

पारं गमिष्यसि यतो भवसागरस्य।

आचार्य शंकर का जीवन ◀ १०१

पुत्राः कलत्रसुहृदो न हि ते सहायाः ।

सर्वं विलोकय सखे मृगतृष्णिकाभम् ॥

दुकान में बैठे हुए मुरारि-चरण-चिन्तन होता है? नोटों का चिन्तन होता है। शास्त्र भजन को कर्त्तव्य क्या जंगली पशु के लिये कहता है? भजन करने का समय अभी मिला। यह मनुष्य जीवन सपने जैसा चला गया तो फिर लख चौरासी आयेगी। मनीराम! हमारा उद्धारकर—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।

बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥

जीव को बन्धन से छुड़ा देगा निर्विषय मन। विषयों में आसक्त का बन्धन बढ़ता जाता है। जीव के मोक्ष का कारण भी मन है। अब अपने मन की पहचान करो, बताओ संसार की तरफ जाता है या भगवान् की तरफ? सिनेमा, होटल और न जाने क्या-क्या होता है जिधर मन जाता रहता है। चार सकार हैं। सिगरेट, सट्टा, सिनेमा, शराब—चार सकारों से बचना चाहिये। माइयाँ सिगरेट तो नहीं पीती, अब क्या पीने लगीं? सिनेमा देखती हैं। सिनेमा में बाबू न भी जाय तो पकड़ हाथ ले जाती हैं कि चलो। आज लोग शराब का पान करने लगे। वेद में ब्रह्महत्या, सुरापान इन्हें महापाप कहा है। ब्राह्मण को मारने का पाप, मदिरा पीने का पाप सबसे बड़ा है। यमराज के ऐसे हण्टर लगे कि पता लगेगा। ब्राह्मण को मारना, मदिरा पीना दोनों पाप हैं। बराबर बड़े। ब्राह्मण का हनन जैसे नहीं करना चाहिये, वैसे मदिरा-पान भी मत करो। सोने की चोरी भी महापाप है। सुनार का खाना इसीलिये नहीं खाना चाहिये। गुरु-स्त्री के साथ बुरा काम करना भी महापाप है। ये चार महापाप हैं। इन चारों को करने वालों का जो संग करे वह भी महापापी है।

मानव शरीर से कल्याण की प्राप्ति होती है और शरीरों से नहीं। चार सकारों से बचो। सट्टा, सिगरेट, शराब, सिनेमा। औरों के चूल्हे से धूँआ निकलता है। सिगरेट पीने वाले के मुख से धुआँ निकलता है, मरने

के बाद क्या दशा होगी। सट्टा जुआ है, वेद में मना है। सिनेमा मत देखना। शराब न पीना। चारों सकारों का त्याग करो तब तुम्हारा काम बनेगा। माइयाँ शराब से बची हैं पर सिनेमा से बचने वाली मुश्किल है। कोई औरत है शराब लेने वाली तो हाथ उठा, माफ़ कर देंगे।

भक्ति

स्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज

वर्तमान सनातन धर्म का जो रूप उपलब्ध होता है, उसे उपलब्ध कराने का श्रेय एकमात्र शंकर भगवत्पाद को है। बौद्ध, जैनों ने धर्म को ऐसी अवस्था में पहुँचा दिया था कि लोग कहते थे, वेदों का उद्धार अब असम्भव है। उसे उस स्थिति से निकालकर हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, द्वारका से प्रागज्योतिषपुर (आसाम) तक पुनः उन्होंने स्थापित किया। आचार्य शंकर को विदेशी लोग नवीन हिन्दूधर्म का संस्थापक कहते हैं। सहस्रावधि उनके शिष्य थे। केवल श्रुति और युक्ति के बल से उन्होंने धर्म-स्थापन किया। बाकी धर्म के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों का निर्माण नहीं किया। चार भागों में ईसा के जीवन का संग्रह उनके अनुयायियों ने ही किया। मोहम्मद स्वयं लिखना तक नहीं जानते थे। कबीर के शब्दों में 'मसि कागद छूयो नहीं।' आचार्य शंकर ने स्वयं भाष्यादि ग्रन्थों का निर्माण किया। आचार्य वेदान्तशास्त्र का ऐसा स्पष्टीकरण दे गये कि तदनुसार शास्त्र का निर्भ्रान्त अभिप्राय सुगम है। भाष्यकारों ने एक विलक्षण काम किया—'षोडशे कृतवान् भाष्यम्' सोलह बरस की उम्र तक भाष्य बना लिये, फिर उसके बाद सोलह वर्ष तक प्रचार-प्रसार किया। धर्म-संस्थापन के प्रयास में उनके विचार नहीं बदले, श्रोताओं की नज़र से नहीं बोले। जो सच्ची बात ठीक निर्धारित की उसी को सुनाते थे। भाष्यों में सिद्धान्त व्यक्त किया, प्रकरणों में प्रक्रिया समझायी, स्तोत्रों से भक्तों को सहारा दिया तब लीला का संवरण किया।

कुछ शिष्यों ने कहा 'हमारे समझने को सरल ग्रन्थ दो।' हजार शिक्षाओं वाली उपदेशसाहस्री बना दी। कुछ ने कहा, 'इतना भी पढ़ना कठिन' तो शतश्लोकी के सौ श्लोक बना दिये। कुछ ने कहा 'इतना भी कठिन है पढ़ना' तो दशश्लोकी का निर्माण किया। उस दशश्लोकी को मधुसूदन सरस्वती ने इतना प्रधान माना कि सिद्धान्तबिन्दु नामक टीका लिखी, जो वेदान्त समझाने वाला अद्भुत ग्रन्थ है। पाँच श्लोक उनके लिये लिखे जो दस भी नहीं पढ़ सकते थे। कुछ ने कहा 'छोटा-सा सूत्र लिखो,' सोलह अक्षरों में समस्त सत्य लिखा—

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ।

ये सोलह अक्षर हैं। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' श्रुति ने कहा था। सत्य मायने जो जिस रूप से निश्चित कर दिया गया उस रूप से उसका व्यभिचार नहीं। सिवाय ब्रह्म के सब चीजें बदल जाती हैं। जगत् कैसा है? मिथ्या। केवल अनित्य मत समझना। संसार को कई अनित्य तो कहते हैं। वेदान्त इतना ही नहीं कहता। बिना विचारे सत्य लगे, विचार पर असत्य निश्चित हो उसे मिथ्या कहा जाता है, संसार ऐसा ही है। 'यथा बुद्धिः शुक्तौ रजतमिति' सीप में चाँदी दीखती है, इसी प्रकार जगत् के सारे पदार्थ दीखते हैं, परीक्षा करो तो झूठे ही निकलते हैं सोचते हो १००० रु. महीना मिलेगा तो सुखी होंगे पर मिले तो कहते हो, 'इतने से तो कुछ नहीं हुआ।'।

काँच को हीरा समझने जैसा जगत् है। यह वास्तविक निकलता नहीं क्योंकि जिस समय दीख रहा है, उस समय भी नहीं है। आगे जाकर नहीं रहेगा ऐसा नहीं, प्रतीतिकाल में भी नहीं है। सत्यवत् क्यों प्रतीत होता है? क्योंकि मन नियन्त्रण में नहीं है। जब तक इसकी तुम परीक्षा करो, तब तक यह दौड़ जाता है। मन आशा की शाखाओं पर बन्दर की तरह एक से दूसरे पर उछलता रहता है। 'नट्याशाशाखास्वटति झटिति स्वैरमभितः'। मोह की अटवी, जंगल में अविवेक से भटकता रहता है। चूँकि मन से ही जानना पड़ता है और वही स्थिर नहीं हो रहा है इसलिये स्थिर ब्रह्म समझ में नहीं आता। इसलिए प्रार्थना की 'कपालिन् भिक्षो मे

हृदयकपिम् अत्यन्तचपलं दृढं भक्त्या बद्ध्वा शिव भवदधीनं कुरु विभो ।’ हे शिव! तुम कल्याणस्वरूप हो। तुम्हारे पास प्रपञ्च है नहीं। क्यों? ‘कपालिन्!’ जो किसी के काम में न आ सके ऐसे नरमुण्ड में भगवान् शंकर खाते हैं। नरमुण्ड में ही दिमाग है। चाहे प्रत्यक्ष प्रमाण से हो, अनुमान-शब्दादि से हो, परोक्ष-अपरोक्ष सब स्पन्द दिमाग में ही पैदा होते हैं। कपाल में होने वाले स्पन्दरूप ज्ञान का ज्ञान करने वाला कौन? वृत्तिज्ञान को खाने वाला कौन? ज्ञान के ज्ञान को खाने वाला साक्षी शिव ही है।

भिक्षुक सात घरों में जाता है, जो मिल गया सो खा लिया। स्वामी रामानन्दजी राम-गीता पढ़ाते थे। एक दिन छात्र से मुँह मोड़ लिया। कारण पूछा। कहा ‘तुमने भिक्षा लेकर नमक क्यों माँगा?’ विद्यार्थी महात्मा को उबाला हुआ मुंडुवे का आटा मिला था बगैर नमक के, इसीलिये माँगा था। रामानन्द जी ने कहा ‘अभी से इतनी कामना है तो ‘काम-गीता’ पढ़ो, राम-गीता पढ़कर क्या होगा?’

प्रमाता दौड़-दौड़ कर ज्ञान करता है। साक्षी कुछ नहीं करता, प्रमाता जो कुछ लाये सब ग्रहण कर लेता है। ब्रह्मनिष्ठा से तपोनिष्ठा, जप-निष्ठा आदि सबका विरोध है। अन्य साधन द्वैत दृष्टि को लाते हैं, इनसे फिर कर्तव्य-बोध होता है। तप आदि को सत्कर्म मानकर उसी में लगते हैं, नयी विधि लद जाती है। कन्या को इसलिये तो नहीं ब्याहते कि जवाईं मर जाये! इसी प्रकार साधन इसलिये तो करते नहीं कि पूर्व के कर्मों में एक और कर्मबन्धन जुड़ जाये।

हृदय वृत्ति को क्या करें? शिव को दे दो।

**गभीरे कासारे विशति विजने घोरविपिने
विशाले शैले च भ्रमति कुसुमार्थं जडमतिः ।
समर्प्यैकं चेतः सरसिजम् उमानाथ भवते
सुखेनावस्थातुं जन इह न जानाति किमहो ॥**

जीव गहरे तालाब में घुसता है कि सिर डुबाकर गोते लगा ले। वहाँ से कमल के फूल तोड़कर ले आता है। पहाड़ पर चढ़ने का प्रयत्न कर

लेगा। केदार में ब्रह्म-कमल लाने जाओ तो भयंकर घाटी पड़ती है। जहाँ प्राणी नहीं, ऐसे जंगलों में जीव जाता है। वास्तव में तो एक चित्त-कमल ही शिव को चढ़ाना है। भक्त की परीक्षा है कि चित्त-कमल चढ़ाता है या नहीं। एक राजा नियम से शिवपूजन करता था। एक बार जंगल में भ्रमण का कार्यक्रम बनाकर कई दिन जंगल में राजा घूमा। रास्ता बताने के लिये एक भील साथ रख लिया। राजा को पूजा करते भील देखता था। राजा जाने लगा तो भील से कहा 'कुछ माँग' उसने शिवलिंग माँगा कि 'वही दे दो, मैं भी पूजा करूँगा।' राजा ने अपनी पूजा का नील मणि का शिवलिंग तो नहीं दिया, दूसरा लिंग देकर नियम बताया कि चिता-भस्म जरूर चढ़ाना। बारह वर्ष बाद एक बार अनेक दिनों तक घनघोर वृष्टि होती रही। भील के पास चिता भस्म खत्म हो गयी। पत्नी से कहा 'मैं आज मरता हूँ क्योंकि पूजा भंग हो गई।' पत्नी बोली 'मैं चिता भस्म तैयार किये देती हूँ। उसने अंदर बैठकर अपनी झोपड़ी में आग लगा ली! प्रार्थना की—

**पुष्पाणि सन्तु तव देव ममेन्द्रियाणि
धूपोऽगुरुर्वपुरिदं हृदयं प्रदीपः।
प्राणा हवींषि करणानि तवाक्षताश्च
पूजाफलं ब्रजतु साम्प्रतमेष जीवः ॥**

अर्थात् 'हे महादेव! मेरी इंद्रियाँ आपके लिये फूल बनें, यह शरीर अगुरु का धूप बने, मेरे प्राण आपके लिये समर्पित हवि हो, मेरी कर्मेन्द्रियाँ अक्षत (चावल) बनें। यों मेरा यह जीव पूजा की सफलता पाये।'।

पूजा का फल जीव को मिले। इसके लिये प्रार्थना कर उसने प्राण त्याग दिये ताकि शिवपूजा के लिये चिताभस्म उपलब्ध हो। पूजा समाप्ति पर भील ने रोज के स्वभाववशात् कहा 'अरी, आ जा नैवेद्य लेकर।' षोडशी कुमारी बनी देवी-सी वह आ गई। भील को आश्चर्य हुआ, तभी भगवान् ने दर्शन देकर दोनों का कल्याण किया।

वास्तव में तो चित्त कमल चढ़ाना पड़ता है। भगवान् के लिये सोने

के कंठे की कीमत नहीं है। सिंहल द्वीप में सोना था। गोरखनाथ के शिष्य ने थैले में सोने की ईंट रख ली। एक बार रास्ते में गोरखनाथ ने चट्टान पर लघुशंका की तो सारी चट्टान सोने की हो गई। गोरखनाथ ने शिष्य से कहा क्यों तू एक बूंद पेशाब ढोये फिर रहा है! जब शिवभक्तों की यह स्थिति है तब क्या परमेश्वर को सोने का हार चढ़ाया तो कुछ फरक पड़ता है? चित्त कमल चढ़ाना है। चित्त कमल चढ़ाने को बार-बार विवेक चाहिए तब वैराग्य होगा। वैराग्य के बगैर हृदय-कपि अत्यन्त चपल ही रहेगा। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' समझो तो पता चले कि 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' मैं ही परब्रह्म हूँ। इसको न जानना ही तो अविद्या है। मैं ही ब्रह्म हूँ, इसका ज्ञान न होना अविद्या है। माया या अविद्या अथवा अज्ञान कोई और चीज़ नहीं है। यह सोलह अक्षरों में वास्तविक तत्त्व आचार्य ने बताया।

जो तत्त्व आपको वर्षों तक भी सुनाया जाता है वही उत्सव में तीन दिन में सुनाया। हमारे प्रेम के कारण ये महात्मा आये। ज्ञान-गंगा प्रवाहित हुई। महाराज जी कष्ट करके आये। सबको पता है कि फूलों से उन्हें जुकाम होता है। चित्तकमल तुम्हें चढ़ाना नहीं है, सोचते हो दुअन्नी की माला से पुण्य होगा! उनके जुकाम की वे जानें। नियम भंग होने से भक्ति नहीं होती पर सनातन धर्मी सोचता है 'हम इतने नजदीकी, हम नियम क्यों मानें?' अनियमितता ही हमारा जीवन बन गया है। हमारा प्रमाण प्रबल है। प्रमेय प्रबल है, पर प्रमाता को देखकर आँसू निकलते हैं। हिन्दू धर्म की कमजोरी प्रमाता है। नियम न मानना, नियम तोड़ना यह हमारा स्वभाव हो गया है। कारण के गुण कार्य में आते हैं। नतीजा? क्या कारण आपके लड़के के मन में आता है कि बस को जला दे। कारण है कि आपके मन में आता है 'हम नियम भंग कर पंक्ति तोड़ कर आगे चलें।' उसी का फल है कि लड़का बिगड़ा। महाराज जी यहाँ कष्ट करके आये। अच्छी तरह ज्ञान गंगा में स्नान कराया, परिक्रमा भी करवाई।

जिसने आज यहाँ उत्सव में धक्का खाया उसे आगे यम का डंडा

न खाना पड़ेगा। जगत् मिथ्या है—यह प्रतिज्ञा कर लो तो जगत् के पदार्थों का आकर्षण नहीं रहेगा। तब पराभक्ति हो सकेगी। जो व्यक्ति इस परमार्थ तत्त्व को प्रचारित-प्रसारित करे उससे बड़ा मेरा भक्त कोई नहीं, यह स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है। अपने जीवन में सभी भगवान् की परा भक्ति करें यही कल्याण का उपाय है।

आशीर्वाद

श्री स्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज

जिह्वा स्वाद का प्रसाद लोगे कि कर्णास्वाद का? जिह्वा स्वाद का प्रसाद है पूरी। कर्णास्वाद का प्रसाद है प्रवचन। वेद का सिद्धान्त है 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म'। वेद ने कहा—मनुष्य! यह निश्चय कर कि तेरे को जो यह जगत् दीख रहा है यह सब ब्रह्म है। 'ब्रह्मैवेदम् अमृतं पुरस्तात्, ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतः चोत्तरेण। अधश्च ऊर्ध्वं प्रस्सृतं ब्रह्मैवेदम् इदं वरिष्ठम् ॥' (मु. २.२.११)

जल के किनारे में बुदबुदा, तरंग दीखते हैं, वे सब जलमात्र हैं। ऐसे ही यह जो सारा जीव और जगत् दीखता है यह ब्रह्मरूप है। रस्सी एक को सर्प दीखती है, एक को जलधारा, एक को माला दीखती है। ऐसे ही एक ब्रह्म अनेक रूप से दीखता है। जैसे रस्सी के अज्ञान से अनेकरूपता वैसे ब्रह्म का अज्ञान ही जीव-जगत् की, बहुत की कल्पना कराता है। वास्तव में कल्पनारहित एक शुद्ध चिदानन्द परमेश्वर है। 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म। नेह नानास्ति किञ्चन'। नानात्व तुम्हारी कल्पना है। वास्तव में एक अद्वितीय परब्रह्म हमेशा ज्ञानरूप से भान होता है। 'ज्ञानमेकं सदा भाति सर्वावस्थासु निर्मलम्। मन्दभाग्याः न जानन्ति स्वरूपं केवलं बृहत् ॥'

सदा अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति में एक ज्ञान ही भासमान है। 'प्रज्ञानं ब्रह्म' महावाक्य है। ज्ञानरूप से प्रत्येक क्षण में परमात्मा का भान होता है। कोई क्षण तुम्हारा है जिसमें ज्ञान न हो? 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' कोई क्षण ज्ञान के बिना नहीं होता। कहोगे कि ज्ञान रहता है, पर

ब्रह्म तो नहीं रहता। लेकिन याद रखो 'ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म'। परब्रह्म का स्वरूप क्या है? ज्ञान। हजार प्रकार के खाण्ड के खिलौने होते हैं। नाना प्रकार के उनके नाम हैं, आकार हैं। पर सब क्या हैं? खाण्डमात्र हैं। जिस खिलौने में जीभ लगाई, वहीं मिठास मिलती है। सारा जगत् ब्रह्म कैसे? जैसे खाण्ड का स्वरूप है मिठास, ऐसे ब्रह्म का स्वरूप है ज्ञान। अब बतलाओ, तुम्हारा कोई क्षण है जिसमें ज्ञान नहीं? जैसे खाण्ड के सारे खिलौने मिठासमात्र, ऐसे सारा जगत् ब्रह्म का रूप है।

कहोगे ब्रह्म तो आनन्दरूप है तो जगत् में भी आनन्द आना चाहिये। तो देखो, आनन्द आता है। कब? जब जगत् को ब्रह्मरूप समझते हो तब। ब्रह्माकारवृत्ति बनी और आनन्द का अनुभव हुआ। कभी बनी ब्रह्माकार वृत्ति? वृत्ति तो जगदाकार बनी बैठी है। ब्रह्माकार वृत्ति बने तो आनन्द का भान होवे।

आज छुड़ी है। घर से भी छुड़ी है क्या? ब्रह्माकार वृत्ति में आनन्द का अनुभव, यह पक्का नियम है जैसे खाण्ड के आकार की वृत्ति बनी और मिठास का अनुभव हुआ। जगत् तो कल्पना से है। एक रस्सी में अनेक पदार्थों की तरह कल्पना से जीव-जगत् अनेक दीखते हैं। वास्तव में अनेक हैं नहीं। वेद, युक्ति, महात्माओं का अनुभव सभी एक अद्वितीय परमेश्वर ही सिद्ध करते हैं। घर में ही रहेंगे आप सब, पर निश्चय करो कि सारा जगत् जो दीखता है वह कल्पना में है। कल्पना कब हटेगी? जब प्राणी सत्संग करेगा। अज्ञान से कल्पना होती है, सत्संग से उसकी निवृत्ति हो जाती है।

जीव और जगत् की भावना से बन्धन है। ब्रह्मभावना से मोक्ष होता है। कौन-सी करोगे भावना? हमेशा ब्रह्म-भावना करो। यही वेदान्त, वेद बताता है। ब्रह्म ऊपर, नीचे, दाँये, बाँये सब जगह है। उसी की भावना करो। ब्रह्मभावना सत्य है। 'सत्यमेव जयते' ब्रह्मभावना करोगे तो सत्य ब्रह्म से जय होगी। जीव का पराजय है मातृगर्भ में आना। ब्रह्मभावना करने वाला मातृगर्भ में नहीं आता। हमेशा के लिये भव-बन्धन में नहीं रहता।

‘ब्रह्मैवाहं, ब्रह्मैवाहं, ब्रह्मैवाहं’ यह भावना करो। ब्रह्म ही मैं हूँ, संसारी नहीं। तब संसार नहीं मिलेगा। ब्रह्मैवाहं यह भावना हो सकती है। बैठे बैठे क्या करते हो? ब्रह्मैवाहं भावना करने वाला भव-बन्धन में नहीं पड़ता। इसलिये कल्याण के भागी बनो।

आशीर्वाद देवें? ‘ब्रह्मैवाहं, ब्रह्मैवाहं,’ यह याद करके उसकी भावना करो, फिर कल्याण में संदेह नहीं। कौन-सी भावना? ब्रह्मैवाहम्। फिर जीव भवबन्धन में नहीं आता। और कोई दूसरा उपाय नहीं। ‘ज्ञानाद् एव तु कैवल्यम्।’ एव पद वेद ने दिया अर्थात् कर्म से, उपासना से कैवल्य नहीं मिलता। ज्ञान क्या है? ‘मैं ब्रह्म हूँ’ यह ज्ञान है। इसी भावना को ज्ञान कहते हैं कि मैं ब्रह्म हूँ। परमानन्द की प्राप्ति आपको होवे, यह हमारा आशीर्वाद है।

